

साहित्यागार
धामाणी मार्केट की गली, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

आदर्श हिन्दी

राष्ट्रभाषा पतंजलि

निगमानन्द परमहंस

'सम्पादन—डॉ० स्वर्णकान्ता 'स्वर्णिम'
एम. ए. (हिन्दी) एम. लिट्, पी-एच. डी.
(लब्ध-स्वर्ण-पदक)

प्रकाशक : साहित्यागार, धामाणी मार्केट की गली
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

संस्करण : 1987

मुद्रक : संजय प्रिंटिंग एजेंसी द्वारा,
राजीव प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-53

मूल्य : पच्चीस रुपये

भूमिका

पंजाब के गाँव में पैदा हुआ, प्रभु-आज्ञा से पन्द्रह वर्ष की आयु में संन्यास ले लिया। काशी संस्कृत-अध्ययन के लिए गया तो वहाँ रामचन्द्र जी वर्मा के सम्पर्क में आया और उनकी 'अच्छी हिन्दी' देखी। उस पुस्तक में अनेक स्थल थे जहाँ मेरा मतभेद था। इस प्रकार संस्कृत से हिन्दी में आने की रुचि इतनी बढ़ी कि ठेठ पंजाबी होते हुए भी, हिन्दी में रम गया और हिन्दी को एक मानक रूप देने के लिए कटिबद्ध हो गया।

केवल स्वयं को ही सरस्वती का एकमात्र उत्तराधिकारी घोषित करने वाले प्रकाण्ड पंडित की पुस्तक में काफी गलतियाँ निकालीं तो उन्होंने 'घास खोदा पंजाबी क्या जाने हिन्दी' कहकर मेरे उत्साह और संकल्प को और दृढ़ कर दिया। फलतः 'हिन्दी का मौलिक व्याकरण' लिख मारा। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने उसे 1973-74 का हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ घोषित कर सम्मानित तथा पुरस्कृत किया।

भाषा-क्षेत्र में इस समय एक अजीब धाँधली मची हुई है। यह हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए विष का काम कर रही है। इसीलिए मैंने यह संकल्प लिया कि जीवन पर्यन्त भाषा-परिष्कार में रत रहूँगा और हिन्दी को एक मानक रूप देने में अपनी सारी ऊर्जा लगा दूँगा। जिस भाषा का कोई मानक-रूप नहीं, वह कभी समादृत नहीं हो सकती। हिन्दी को एक मानक रूप देने की भूख के परिशमन के फलस्वरूप ही "आदर्श हिन्दी" ग्रन्थ का जन्म हुआ।

इस पुस्तक में व्याकरण की उपादेयता, शब्द भेद, विरामचिह्न, वाक्य भेद, भाषा की स्वाभाविकता, दूषित वाक्यों का वर्गीकरण, भाषा की छानबीन, हिन्दी के देश में अंग्रेजी आदि विषयों पर स्वतन्त्र चिन्तनपूर्ण विचार के साथ गण्यमान्य विद्वानों द्वारा किए जाने वाले दोषों का निर्देश करते हुए उन दोषों के परिहार का भलीभाँति मार्गदर्शन किया गया है।

हिन्दी के उच्च कोटि के चिंतकों और साहित्यकारों की भ्रांतियों को मैंने तेजोद्वेष की भावना से नहीं, अपितु शुद्ध भाव से उद्घाटित किया है। भ्रांतियों की ओर मात्र अंगुलि निर्देश ही मैंने नहीं किया अपितु उन्हें व्याकरण के नियमों द्वारा दोष-पूर्ण उदाहरणों से शुद्ध रूप में समझने का प्रयास किया है।

हिन्दी जब देश की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त कर चुकी है तो उसमें एक-रूपता लाना नितान्त आवश्यक है। निर्बन्ध होने पर उसमें अराजकता पैदा हो सकती है अतः उसे दूर करने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को परिष्कृत एवं संस्कृत करना ही चाहिए।

सौ० डॉ० स्वर्णिम ने इस पुस्तक का सम्पादन किया है अतः उन्हें मेरा आशीष है कि वे अपने मिशन में सफल हों।

—निगमानन्द

अन्तर्वस्तु

* * *

शब्द के सम्यक् ज्ञान का महत्व

यदि हम हिन्दी-भाषा को भगवती भागीरथी का रूप मान लें तो संस्कृत-भाषा को उसका उद्गम-स्थान गोमुख-गंगोत्तरी मानना होगा। व्याकरण तो भाषारूपी भागीरथी का उन्नत किनारा होता ही है, जो भाषा-भागीरथी के साथ-साथ चला चलता रहता है तथा उसकी स्वछन्द गति में किसी प्रकार की कोई बाधा न डालकर उसे इधर-उधर भटकने से सदा रोकता रहता है। जिसके कारण भाषा-भागीरथी अपनी उसी स्वछन्द गति से निर्बाध बहती चली चलती है, इधर-उधर भटककर (अनेक धाराओं में बिखरकर) नष्ट-भ्रष्ट नहीं होती। इसी गति का दूसरा नाम 'ढंग' है। यह ढंग प्रत्येक भाषा का अपना-अपना स्वतन्त्र होता है। किसी एक भाषा के ढंग को किसी दूसरी भाषा में व्यवहृत या प्रयुक्त करके उस भाषा का ढंग ही नहीं बिगाड़ना; उसका स्वरूप भी बिगाड़ना है। भाषा के नैसर्गिक स्वरूप की रक्षा उसके अपने ढंग से ही हो सकती है। इसलिए प्रत्येक लेखक या वक्ता का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी भाषा के स्वरूप की सब प्रकार से रक्षा करे।

व्याकरण को किनारा कहने का यह मतलब कदापि नहीं कि वह भाषा में बाहर से कुछ आने ही नहीं देता। भले ही बाहर से कुछ आए; पर उसे व्याकरण के शासन में ही रहना पड़ेगा। 'नौ बैरागी, ग्यारह चूल्हे' नहीं हो सकेगा। उसे तो इधर भरती होते ही दूसरों की भाँति उन्हीं के वेश में और उन्हीं के साथ-साथ पैर उठाना होगा—कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलना होगा—और उतार कर दूर रख देना होगा अपने उस धारीदार तहमत तथा वियद्-विहारी तुर्रे को। यहाँ तो 'कागजात' को 'कागज', 'फीट' को 'फुट', 'लैनटर्न' को 'लालटैन' और 'जरूरियात' को 'जरूरतें' जरूर ही बनना पड़ेगा। यही तो वेदान्तियों का 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' है।

जिस प्रकार भगवती भागीरथी अपने उद्गम-स्थान पर बहुत ही लघु रूप में होती है पर ऋषिकेश तक आते-आते वह 'बृहदाकार' हो जाती है, और हरिद्वार

पहुँचने पर तो उसका अनेक प्रकार से उपयोग भी होने लगता है। वह हमें अपना जीवन (जल) देकर स्वस्थ, नीरोग तथा हृष्ट-पुष्ट बनाती है; हमारी इस रत्नगर्भा वसुन्धरा को उर्वरा, शस्य श्यामला, विश्वम्भरा और भी न जाने क्या-क्या बना डालती है। क्या मार्ग में उसमें अन्य पहाड़ी स्रोत नहीं मिलते? क्या वे उसके उस नैसर्गिक रूप मे कुछ बाधा डालते हैं? वे तो अपना जीवन (जल) देकर उसके उस रूप को विपुल बनाते हैं, उसे गति देते हैं और उसकी युगान्त स्थायी प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाते हैं। तरल स्रोतों के ही कारण वह शुद्ध सुनिर्मल बनी हो, यह बात नहीं, अपितु आते समय ननिहाल से जो अपने साथ कंकड़ लेती आई थी; उनका भी इसमें बहुत-कुछ हाथ है। नीलधारा या सप्तसरोवर पर पड़े हुए छोटे-छोटे उन गोल-मटोल कंकड़ों को देखकर भले कोई शैव या वैष्णव शिवलिंग या शालिग्राम की भावना कर बैठें, पर किसी पेट के धनी व्यक्ति की जीभ तो उन्हें देखते ही बंगाली टोले के रसगुल्लों और गुलाब-जामुनों की याद से गीली हुए बिना नहीं रह सकती।

सारांश यह कि कितनों (स्रोतों) को तो भागीरथी ने बिलकुल आत्मसात् कर लिया है, कितनों का रूप परिवर्तित कर डाला है (गोल-मटोल बना दिए हैं) और कितने उसके प्रवाह में न बहकर अपने उसी रूप में ज्यों-के-त्यों पड़े हैं।

ठीक इसी प्रकार हमारी हिन्दी भी अपनी नानी (संस्कृत) के यहाँ से बहुत-से शब्द अपने साथ लेती आई थी। जो आते-आते घिस गए; भाषा शास्त्री उन्हें 'तद्भव' कहने लगे, जो ज्यों-के-त्यों पड़े रहे; उनका नाम पड़ा 'तत्सम', जो बाहर से आकर मिल गए वे कहलाए 'परकीय' और जो यहाँ के निवासियों की बोलियों में से लिए गए वे हुए 'देशी'।

हिन्दी शब्द-विभाग

१. तद्भव—खेत, सेज, मेह, दूध, हाथ, आदि। इनके मूलरूप—क्षेत्र, शय्या, मेघ, दुग्ध, हस्त आदि।
२. तत्सम—राजा, माता, कवि, नदी, वृक्ष, सूर्य आदि।
३. परकीय—
   अरबी—इम्तिहान, औरत, तारीख आदि।
   फारसी—आदमी, आबादी, बाग, चश्मा, चाकू आदि।
   तुर्की—कोतल, तोप, लाश, आदि।
   पोर्चगीज—पादरी, गिर्जा, कमरा, पलटन आदि।
   अंग्रेजी—अपील, डाक्टर, कोर्ट, पेंसिल, इंच, पेंशन, फुट, बैंक, होटल आदि।
४. देशी—रोड़ा, खिड़की, ठेस, होड़, टोला, पगड़ी, झिलमिल, रिमझिम, ऊधम, खलबली, खटखटाना आदि।

सब प्रकार के इन शब्दों से हमारी हिन्दी का कलेवर खूब पुष्ट हुआ। इसका कोश बढ़ा; इसमें दूसरी भाषाओं के समान अनेक विषयों पर ग्रन्थ निर्माण की योग्यता

आई। इस विषय में श्रद्धेय आचार्य महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने उस यन्त्र का-सा काम किया जो (यन्त्र) नदी के आविल (गँदले) जल को शुद्ध और पेय बनाकर लोह-नलिकाओं द्वारा लोगों के घरों तक पहुँचाता है। द्विवेदी जी ने भी हिन्दी को शुद्ध (व्याकरण-सम्मत) बनाकर अपनी प्रगट 'सरस्वती' के द्वारा लोगों तक पहुँचाया। "हमारा साहित्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे।...गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के शुभ प्रभाव का स्मरण, जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा"—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

जिस प्रकार कुम्भ आदि पुण्य पर्वों पर धार्मिक लोग गुप्तदान करना कोटिगुना फलजनक मानते हैं, और इसी प्रकार से प्रेरित होकर वे रुपया, सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ जल में बहा देते हैं। पर वे गरिष्ठ होने के कारण तल पर जा बैठती हैं तथा कुछ लोग काशीफल आदि में स्वर्ण, रत्न आदि डाल या भर कर प्रवाह में बहा देते हैं; पर काशीफल के पोले होने के कारण वे ऊपर ही तैरते रहते हैं।

ठीक उसी प्रकार आजकल हमारी हिन्दी भाषा में भी गुप्तदान चल रहा है। पुराने संस्कारों के कुछ लोग तो संस्कृत को देववाणी मानकर अवसर हाथ लगते ही चुपचाप गुप्तदान कर जाते हैं। पर वे गरिष्ट एवं क्लिष्ट होने के कारण निम्नतल में ही पड़े रह जाते हैं; वर्तमान में उनका चलन नहीं हो पाता। समयान्तर में वे सौभरि ऋषि के समान हाड़-माँस गलाकर चल पड़ें तो यह दूसरी बात होगी। 'अन्तारािष्ट्रय' (अन्तर्राष्ट्रीय) 'पुनरचना' (पुनर्रचना) 'क्लिष्ट' 'अविमृष्ट' आदि शब्द इसी कोटि के हैं। कुछ लोग मानसिक परतन्त्रता के कारण परकीय शब्दों के प्रयोग करने में जरा भी हिचकिचाते नहीं; वाक्य-वाक्य पर 'फूल' (मूर्ख) 'माइण्ड' (मस्तिष्क) आदि, शब्दों को निधड़क प्रयुक्त करते चले जाते हैं। पर ये शब्द भाषा के अंग न बनकर उसी काशीफल के समान ऊपर ही ऊपर तैरते दिखाई देते हैं। 'आचार्य शुक्ल जी...केवल शैली को महत्व देने वाले कोरे अभिव्यंजनावादियों के सख्त खिलाफ हैं' में 'सख्त खिलाफ' पर ध्यान गए बिना नहीं रह सकता, कारण कि आरम्भ से लेकर यहाँ तक उस लेख में एक भी परकीय शब्द नहीं आने पाया। लगभग पौने सौ पंक्तियों के बाद इस 'युगल-जोड़ी' के दर्शन होते हैं। इसलिए यह प्रयोग खटकता है। मानो किसी ने खड़ाऊँ, धोती और बगलबन्दी पहने हुए किसी मारवाड़ी सेठिया भक्त के सिर पर यह काली पूँछवाली लाल टोपी रख दी हो। यहाँ तो अमृती-सी गुंथी हुई गुलाबी पगड़ी ही फब सकेगी। यदि कहें कि 'कट्टर विरोधी' रख देने से तो 'श्रुतिकटु' (जो कानों को मधुर न लगे) दोष आ जाएगा। पर 'सख्त खिलाफ' रख देने पर भी 'अश्लीकृत' (जिसके उच्चारण में थूक गिरे) दोष आ ही गया। प्रथम तो एक-दो टकारों के उच्चारण में 'श्रुतिकटु' दोष होता ही नहीं, होता भी हो तो वह शृंगार रस में। पर यहाँ तो 'कट्टर' कहे बिना वह कटुता व्यक्त ही नहीं हो पाती जो इस वाक्य का असली विधेय है।

निष्कर्ष यह निकला कि अब हमें आवश्यकता के बिना दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में ठूस-ठूंस कर इसे कृत्रिम तथा कठिन नहीं बनाना चाहिए। तभी दूसरी भाषाओं से शब्द लेने चाहिए, जब हमारे शब्द हमारे हार्दिक भाव प्रगट करने में अशक्त-से प्रतीत होते दिखाई दें। बिना आवश्यकता के किसी के आगे हाथ पसारते फिरना तो 'घर की खांड किरकिरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा' के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

जिसे देखिए वही जहाँ-तहाँ बिना समझे-बूझे 'बड़ा' शब्द का प्रयोग करके चलते बनता है। मानो 'बड़ा' शब्द के अतिरिक्त हमारे कोश में कोई दूसरा शब्द है ही नहीं। यथा—

१. विराम चिह्न बड़े सहायक होते हैं।
२. बड़े-बड़े सूक्ष्मभावों का।
३. दोनों प्रकार के निबन्धों के बीच की रेखा बड़ी क्षीण है।
४. हास्यरस में सुरुचि की बड़ी आवश्यकता है।
५. बड़े आदर से लिया जाता है।
६. प्रेम का बड़ा सुन्दर स्वरूप दिखाई देता है।
७. इन्होंने बड़े सुन्दर नीति के दोहे लिखे हैं।

'अच्छी हिन्दी' तथा 'हिन्दी प्रयोग' पुस्तकों में लेखकों से होने वाली हजारों भूलों का मार्मिक विवेचन किया गया है। उन्होंने 'बड़ा' शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में बताया है कि 'बड़ा' शब्द विशेषण ही है और इसलिए उसका प्रयोग केवल संज्ञाओं से पहले होना चाहिए; विशेषण, क्रिया या क्रिया विशेषण के पहले नहीं होना चाहिए। यद्यपि इस लक्षण के अनुसार ऊपर के सब उदाहरण अशुद्ध ठहरते हैं, फिर भी कुछ उदाहरण ऐसे हैं; जो इस लक्षण के अनुसार शुद्ध होने पर भी अशुद्ध ही हैं। जैसे—

अशुद्ध	शुद्ध
१. बड़ा शब्द है।	१. घोर या ऊँचा शब्द है।
२. बड़ा स्पर्श है।	२. कोमल या मृदु स्पर्श है।
३. बड़ा ही रूप है।	३. सुन्दरतम रूप है।
४. बड़ी सुगन्ध है।	४. उत्कट गन्ध है।
५. बड़ा तेज है।	५. उग्र या चण्ड तेज है।
६. बड़ी बुद्धि है।	६. तीव्र या तीक्ष्ण बुद्धि है।
७. बड़ा दुःख है।	७. महा, अति या बहुत...।
८. बड़ी हवा है।	८. तीव्र या तेज...।
९. बड़ा आकाश है।	९. विपुल या व्यापक...।
१०. बड़े-बड़े सूक्ष्म भाव।	१०. सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव।

अपने लक्षण का अनुसरण करने से ही उपर्युक्त पुस्तकों के लेखक की लेखनी से भी कुछ ऐसे उदाहरण निकल ही गए हैं, जैसे—'बड़ी-बड़ी आशाएं' (बहुत-बहुत, होना चाहिए) । 'बहुत बड़े सुखजीवी' (बहुत ही या बहुत अधिक होना चाहिए) 'बहुत बड़ी अराजकता फैली हुई थी' (बहुत अधिक लिखना ही संगत है) । मेरी सम्मति में 'बड़ा' शब्द को 'वट' शब्द का तद्भव मानना चाहिए । इसलिए इसका प्रयोग सदा साकार पदार्थों के लिए ही करना चाहिए या जिनका आकार बन सके उनके लिए; निराकार पदार्थों के लिए नहीं । 'बड़ा पानी या बड़ा घी अथवा बड़ा आटा' आदि लिखना या बोलना ठीक नहीं, क्योंकि पानी, घी, आटा आदि पदार्थ नीरूप भले ही न हों; पर निराकार अवश्य हैं । आधार के आकार से भिन्न इनका स्वतन्त्र कोई आकार ही नहीं । 'आटा' भी छोटे-छोटे कणों का पुंज है; उसका छोटा-बड़ा आकार नहीं होता । यद्यपि संख्या, बात आदि पदार्थ भी निराकार ही हैं; तो भी इनका आकार बनाया जा सकता है । जैसे—१, १०, १०० । कोई बात दस पंक्तियों में लिखी जाती है तो कोई बीस पंक्तियों में । इसलिए 'छोटी संख्या' तथा 'छोटे मुंह बड़ी बात' लिखना और बोलना सर्वथा शुद्ध है । नए विद्यार्थियों को चाहिए कि जिस शब्द के साथ 'छोटा' शब्द का प्रयोग ठीक बैठ सके; उसी के साथ 'बड़ा' शब्द बैठाना चाहिए ।

हिन्दी के मंजे हुए लेखक भी संस्कृत के 'अल्पायु' शब्द का अनुवाद 'थोड़ी अवस्था' कर गए हैं, जो ठीक नहीं, कारण कि 'अल्प' शब्द 'लघु' शब्द का पर्याय नहीं; 'लघु कौमुदी' (छोटी कौमुदी) के स्थान पर हम 'अल्प कौमुदी' (थोड़ी कौमुदी) नहीं कह सकते । 'अल्पायु' शब्द की उत्तर अवस्था का बोधक भी 'दीर्घायु' शब्द है, न कि 'बह्वायु' । इसलिए थकारानुप्रास के लोभ से 'थोड़ी अवस्था' न लिखकर 'छोटी अवस्था' ही लिखना चाहिए । संस्कृत में भी 'लघ्वायु' शब्द के स्थान पर 'अल्पायु' शब्द का प्रयोग मुखसुखार्थ ही किया गया जान पड़ता है ।

'लिया' क्रिया का बहुवचन 'लिये' * होता है; और एक 'लिए' अव्यय भी है, पर इस अत्यन्त साधारण बात पर भी लेखक ध्यान नहीं रखते । 'लिए' अव्यय को भी 'लिये' लिखते चले जाते हैं । यह सदा यकार-रहित ही लिखना चाहिए । नए विद्यार्थियों को चाहिए कि किस, किसी, उस, उसी, इस, इसी, 'के' 'ने' और 'रे' के आगे सदा यकार-रहित 'लिए' ही लिखा करें (जैसे—राम के लिए, तेरे लिए, अपने लिए) ।

एक संस्कृत का 'सहज' शब्द है । जिसका प्रयोग एक योग्य लेखक 'सुगम' शब्द के स्थान पर बार-बार करते चले जाते हैं । परन्तु 'सहज' शब्द की अपनी अलग भूमि है । इसी के लिए इसका प्रयोग होना चाहिए, जैसे—'सहजं कर्म कौन्तेय ! सदोषमपि न त्यजेत्' 'क्रोध करना तो उसका सहज स्वभाव है' 'उसकी सहज बुद्धि पर सब लट्टू थे' आदि । सच तो है कि इस लोक और परलोक में कोई शब्द तब तक हमारे भाव ठीक-ठीक नहीं दुह सकता; जब तक वह सम्यक् ज्ञात और सुप्रयुक्त न हो ।

---

* अब मैं सर्वत्र 'ये' के स्थान पर 'ए' लिखने का प्रबल समर्थक हूं क्योंकि 'ए' लिखना ही वैज्ञानिक है ।

२

* * *

व्याकरण की उपयोगिता

पहले कहा जा चुका है कि व्याकरण भाषा-भागीरथी का उन्नत किनारा माना
जाता है। अतः भाषा-भागीरथी का अवगाहन करने के लिए लेखक को व्याकरण का
सहारा लेना ही पड़ता है। यदि लेखक इस उन्नत किनारे से किंचित भी स्खलित हो
जाता है; तो उसकी टांग टूटे बिना नहीं रह सकती। उसे 'पंगुर्व्याकरणं विना' होना
ही पड़ता है।

कुछ लोग व्याकरण पढ़े बिना भी शुद्ध भाषा लिख और बोल लेते हैं; और
कुछ लोग व्याकरण पढ़कर भी शुद्ध भाषा लिख और बोल नहीं सकते। इससे व्याकरण
की उपादेयता मे कुछ भी कमी नहीं आती। व्याकरण के ज्ञान द्वारा लेखक अज्ञान
से होने वाली अपनी भूलों से सतर्क रह सकता है। किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से
कोई आपत्ति उठाने पर उसका योग्य समाधान कर सकता है। मान लीजिए किसी ने
व्याकरण तो नहीं पढ़ा, पर वह शुद्ध भाषा लिख और बोल लेता है। यदि उससे
पूछा जाए कि 'आज्ञानुसार' एक पद है या दो? यदि दो हैं तो 'आज्ञा' शब्द के आगे
कौन-सी विभक्ति है? यदि कहें कि 'तत्पुरुष' है उसमें तो उत्तरखण्ड (पद) प्रधान
होता है, जैसे 'राज-पुरुष जाता है' में उत्तरखण्ड 'पुरुष' पद ही प्रधान है; वही जाता
है, राजा नहीं। इसी प्रकार प्रकृत उदाहरण 'आज्ञानुसार' मे भी उत्तरखण्ड प्रधान
होना चाहिए। वह है 'अनुसार' पद पुलिंग का वाचक। 'उनका राज-पुरुष है' की
भाँति 'उनका आज्ञानुसार' लिखा और बोला जाना चाहिए। बस, अब वह 'पंगु' के
ाप-साथ 'मूक' भी हो जाता है; और बन जाता है 'अवैयाकरण-खसूचिः' नीचे-ऊपर
कने वाला।

अथवा—'चाँद के समान मुख' और 'कमल के समान आँखें' आदि वाक्यो मे,
—'चाँद' और 'कमल' उपमान हैं, 'मुख' और 'आँखें' उपमेय हैं। दोनों के साधा-
धर्म (सादृश्य) का वाचक है 'समान' पद, जो सदा उपमान के ही आगे आता

है। क्रमशः 'वर्तुल होना, आनन्द देना, आदि' तथा 'कुछ-कुछ नीलापन लिए खिले रहना, विशालता आदि' साधारण धर्म हैं, अतः यह 'उपमा' है। वैसे ही 'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आँखें' आदि वाक्यों में भी 'भीम' और 'मृग' को उपमान, 'बल' और 'आँखों' को उपमेय माना जाना चाहिए। पर इनका साधारण धर्म सिद्ध नहीं होता क्योंकि न तो 'बल' के ही भीम के समान आगे को उभरी हुई तोंद और बिच्छू की पूंछ जैसी मुड़ी हुई मूँछें हैं; और न 'आँखों' के ही मृग के समान नुकीले बलदार लम्बे-लम्बे सींग और लकड़ी जैसी पतली-पतली चार टाँगें हैं; फिर उपमा कैसे? बस, 'मौनं सर्वार्थसाधनम्'। यदि वह मुझ से ही इसका उत्तर पूछ बैठें तो मैं कहूंगा कि पहले 'चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः' कर आइए।

मेरा तो मत है कि व्याकरण भाषारूपी रेल का टिकट है, जिसके बिना निश्शंक यात्रा हो ही नहीं सकती। बिना टिकट के यात्री के लिए तो प्रत्येक काली टोपी 'टिकट देखनेवाला' बन-बन कर आती है। गन्तव्य स्टेशन के सींखचों के बाहर पैर रखने तक यह धुक्-धुकी बनी ही रहती है। यदि कहीं बीच में ही टिकट देखनेवाला आ जाता है, तो बेचारे की नानी मर जाती है और देने पड़ जाते हैं, एक के बदले दो।

व्याकरण एक विशाल शास्त्र है और उसका अपना स्वतन्त्र विषय है। न तो यह इस छोटी-पुस्तक मे आ ही सकता है और न मैं ही उसे लाने की चेष्टा करूँगा। क्योंकि यह पुस्तक उन लोगो के लिए लिखी जा रही है जिन्होंने व्याकरण का थोड़ा-बहुत ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है, पर भाषा लिखने से हिचकिचाते हैं। आगे के किसी एक प्रकरण मे व्याकरण की भी कुछ विशिष्ट बातें मिलेंगी। पर वे गौण ही होंगी। इस पुस्तक का मुख्य विषय तो शुद्ध वाक्यों का ज्ञान कराना है; और बताना है कि लेखक किस प्रकार दूषित वाक्य लिख जाते हैं। उन दोषों से कैसे सावधान रहा जा सकता है आदि आदि। अस्तु, अब पिछले प्रश्नों का उत्तर देकर यह प्रकरण समाप्त करना चाहिए।

पहला प्रश्न यह है कि 'उनका राजपुरुष' है की भाँति 'उनका आज्ञानुसार' या 'उनका इच्छानुसार' क्यों लिखा और बोला नहीं जाता? जब कि तत्पुरुष समास में उत्तरखण्ड प्रधान होता है।

सुनिए—'आज्ञानुसार' यह समस्त पद नहीं, सवर्ण-दीर्घ ही समास की भ्रान्ति पैदा कर रहा है। वास्तव में यह 'असमस्त' पद है, जो 'आपकी आज्ञा-अनुसार' ही लिखा जाना चाहिए। 'आज्ञा' शब्दोत्तरवर्ती 'के' विभक्ति चिह्न का लोप हो गया है। यदि 'अनुसार' 'अनुकूल' और 'अनुरूप' शब्द आगे हो तो षष्ठी विभक्ति का विकल्प से लोप होता है। जैसे—'आपकी आज्ञानुसार' या 'आपकी आज्ञा के अनुसार' 'शास्त्र की रीत्यनुकूल' या 'शास्त्र की रीति के अनुकूल' एवं 'उसकी आकृत्यनुरूप' या 'उसकी आकृति के अनुरूप'।

यदि—'बिना' 'पीछे' और 'अनुसार' भूतकालिक (कृदन्त) धातुज प्रत्यय

आगे आ जाएँ तो भी इनके पहले विभक्ति नहीं आती। जैसे—'काम किए बिना गए पीछे कहे अनुसार'।

एवं—

१. वह कौड़ियाँ (को) मारता है।
२. मोहन आम (को) चूसता है।
३. पत्र (को) लिखा गया।
४. चिट्ठी (को) भेजी जाएगी।
५. रात (को) बहुत वर्षा हुई।
६ श्याम कलकत्ते (को) गया।
७. दमयन्ती पढ़ने (को या के लिए) जाती है।
८. उसे आड़े हाथो (से) लिया।
९. आँखों (से) देखी बात।
१०. पाँव (पर) पड़कर मनाओ।
११. इस जगह (पर) मत रहो।
१२. यह धन किस काम (में) आएगा।
१३. चार आने (में) सेर चावल।
१४. सारा सामान एक ही बार (में) उठा ले गया।
१५. कभी तो दीनदयाल के, भनक पड़ेगी कान (में)।
१६. वह बनारस (में) रहकर कलकत्ते जाएगा।

उक्त वाक्यों में के ( ) कोष्ठान्तर्गत विभक्ति-चिह्न सदा लुप्त ही रहते हैं।

एक प्रख्यात विद्वान 'आपके इच्छानुसार' लिखने के पक्ष में हैं; और स्वयं लिखते भी हैं। तब तो 'उनकी बात करना महा पाप है' के स्थान पर 'उनके बात करना महा पाप है' लिखा जाना चाहिए; पर यह ठीक नहीं, कारण कि ऐसे स्थानों पर विभक्ति चिह्न लुप्त रहता है, समास नहीं माना जाता—बात करना = बात (का) करना।

दूसरा प्रश्न है 'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आँखें' यहाँ साधारण धर्म (सादृश्य) कैसे बनाया जाए?

अच्छा, लीजिए—'भीम के समान बल' और 'मृग के समान आँखें' वाक्यों में क्रमशः 'के' विभक्ति के उत्तरवर्ती 'बल' और 'आँखें' शब्द लुप्त हैं। उनका अध्याहार करने से यह अर्थ सम्पन्न होता है कि 'भीम के बल के समान बल' और 'मृग की आँखों के समान आँखें'। यह बात द्योतित करने के लिए या सुगमता के लिए बीच में 'का, की, रा, री, विभक्ति चिह्न भी जोड दिए जाते हैं। जैसे—'भीम का-सा बल' 'मृग की-सी आँखें' ('भीम-सा बल', 'मृग-सी आँखें' के स्थान पर) 'तुम्हारा-सा रूप' ('तुम-सा रूप' के स्थान पर) 'तुम्हारी-सी बुद्धि' ('तुम-सी बुद्धि' के स्थान पर)।

लगे हाथ एक और बात (विशेषतः पंजाबी विद्यार्थियों के लिए) लिख देता हूँ। 'हमने खाना है' 'हमने जाना है' 'तुमने देना है'. 'उसने लेना है' आदि रूप पंजाबी ढंग कहकर प्रयोगानर्ह ठहराए गए हैं। मेरी सम्मति में इन्हें 'ढंग' न कहकर 'अशुद्धि' ही कहना चाहिए। जैसे—'हाथी आती है' पूरबी ढंग नहीं; वैसे 'हमने खाना है' भी पंजाबी ढंग नहीं। पहले प्रयोग में 'लिंग' की अशुद्धि है और दूसरे में 'कर्ता' की। 'ढंग' तो वही कहा जाना चाहिए, जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अपनी भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल न पड़े और दूसरी किसी भाषा में बोला जाता हो, जैसे—'निकट भविष्य में' लिखना या बोलना अंग्रेजी का अपना ढंग है और यह हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध भी है, (निकट=पास का, भविष्य=आनेवाला समय, अर्थात जल्दी)। पर यह हिन्दी का 'ढंग' नहीं। हिन्दी का अपना ढंग तो 'शीघ्र' ही है। यही लिखा और बोला जाना चाहिए। भले ही दूसरे 'सौगन्ध खाना' और 'टट्टी खाना' कहा करें; पर हमें तो 'शपथ करना' और 'टट्टी घर' ही कहना चाहिए।

हाँ 'हमने खाना है' आदि वाक्य अशुद्ध कैसे और क्यों हुए?

सुनिए—इन सभी वाक्यों में क्रिया का सामान्य रूप (खाना, जाना आदि) 'सामान्य भविष्यत्' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिसके कारण 'हमने खाना है' का अर्थ होता है 'हम खाएँगे' और 'हमने जाना है' का अर्थ होता है 'हम जाएँगे'। भविष्यदर्थक क्रिया के साथ कभी तृतीयान्त कर्ता नहीं आता। जैसे 'हमने खाएँगे' लिखना या बोलना व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, वैसे 'हमने खाना' आदि वाक्य भी अशुद्ध हैं। होना चाहिए 'हमें खाना' है 'हमें जाना है' आदि। इन प्रयोगों में 'राम को चाहिए' आदि की भाँति उपपद चतुर्थी विभक्ति आई है।

यह अशुद्धि हुई क्यों? इसके मैं दो कारण समझता हूं। एक तो यह कि संस्कृत में 'अस्माभिः भक्षणीयम्' लिखा और बोला जाता है। जिसका अनुवाद संस्कृत के पुराने पण्डितों ने हमें तृतीयान्त कर्ता रखकर ही सिखाया है—अस्माभिः=हमने, भक्षणीयम्'''खाना है तथा 'वयं भक्षणीयाः' का 'हमको' या हमें खाना है' अनुवाद सिखाया। इस उदाहरण में 'कर्मणि' प्रत्यय है, कर्म है 'हमको या 'हमें' तृतीयान्त कर्ता 'सिंहेन' उपरिष्ठात् आक्षिप्त है। जिसका अर्थ होता है 'हमको या हमें सिंह खा जाएगा'। बस यही संस्कृत व्याकरण के संस्कार हमसे अशुद्धि करा डालते हैं। यद्यपि संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी गुजराती आदि भाषाओं की प्रकृति सर्वथा एक ही है। फिर भी इनके व्याकरणों के कुछ-एक नियम स्वतन्त्र भी हैं। उनका सदा ध्यान रखना चाहिए। दूसरा कारण 'मैंने सुना है' यह हिन्दी का प्रयोग है। इसकी देखा-देखी पंजाबी छाती के बल 'मैंने खाना है' 'मैंने जाना है' लिखते और बोलते चले जाते हैं, यह सोचते तक भी नहीं कि भाषा में छाती के बल काम नहीं चला करता, इसमें तो खोपड़ी को कष्ट देने की थोड़ी आवश्यकता पड़ती है। 'मैंने सुना है' यह आसन्नभूत है सामान्य भविष्यत् नहीं। आज से जरा सोच-विचार कर ही इसका प्रयोग कीजिएगा, नहीं तो वैयाकरण लोग रुष्ट हो जाएँगे।

वस्तुतः किसी भाषा का व्याकरण जाने बिना उसका अवगाहन करना अत्यन्त दुष्कर है। इसलिए संस्कृत में कहावत है कि "मुखं व्याकरणं स्मृतम्" अर्थात्—व्याकरण भाषा का मुख है, मुख के बिना बोल लेना अवश्य आश्चर्य की बात है। वेदभगवान् तो यही बात और भी आलंकारिक रूप में कह रहे हैं कि "उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव..." अर्थात्—व्याकरण भाषा का 'परिणय' है; एक बार परिणय हो जाने पर भाषा परिणेता से कुछ भी (प्रकृति-प्रत्यय आदि) लुका-छिपा नहीं रखती। व्याकरण शब्द का अर्थ ही विभाग करके भली-भाँति समझाना है।

३

* * *

अज्ञात शब्द-प्रयोग-दोष

हम मनुष्य में जन्मजात एक प्रवृत्ति पाते हैं कि वह प्रत्येक विषय को जानना चाहता है। उसकी यह जिज्ञासा—"क्या है ? कौन है ? कहाँ से है ?" आदि प्रश्नों के रूप में अभिव्यक्त होती है। उसकी यह जिज्ञासा छोटी अवस्था में उत्कट तथा उत्सुकता-पूर्ण होती है। दस वर्षों के अन्दर-अन्दर वह छोटे-मोटे पदार्थों की जितनी आकृतियाँ नाम सहित जान लेता है; उतनी आकृतियाँ वह आजीवन नहीं सीख पाता। यदि उसको इन आकृतियों की नामावलि का एक संग्रह तैयार कर दिया जाए तो वह इतना बड़ा तथा भारी हो जाए कि स्यात् वह उसे उठा भी न सके। पर यह सब उसका ज्ञान पदार्थों की बाह्य आकृतियों तक ही सीमित रहता है। वह उनके स्वभाव की (व्युत्पत्ति की) गहरी गुहा में घुस नहीं पाता। बड़ा होने पर उसमें एक तर्क-वितर्क की शक्ति पैदा हो जाती है। अब वह प्रत्येक पदार्थ को अपनी इसी कसौटी पर कसने-परखने लग जाता है, जिससे वह पारखी (अनुभवी) बन जाता है। वह अपने इस अनुभव के बल पर ही भले व्यक्तियों के साथ अपना सम्बन्ध गाँठता रहता है और बुरे व्यक्तियों से सदा दूर हटता चला जाता है; उन्हें अपने पास तक फटकने नहीं देता।

साहित्य-संसार में उतरते ही हमें नए-नए व्यक्तियों के दर्शन होते हैं; ये व्यक्ति हैं 'नाम' (संज्ञाएँ)। जब ये ध्वनि के रूप में होते हैं, तब हमारे कानों का ही विषय रहते हैं, जब वर्णों (अक्षरों) के वस्त्र पहन कर हमारे सामने आते हैं; तब हम इन्हें आँखों से देख लेते हैं। अर्थात्—अब ये हमारी आँखों का विषय भी बन जाते हैं। आँखों से इनकी बाह्य आकृतियाँ पहचान भर लेते हैं कि ये किस कुल और किस देश के हैं। इसी के आधार पर हम अपनी भाषा के नाम (शब्द) चार भागों में बाँट आए हैं : १. तद्भव, २. तत्सम, ३. परकीय और ४. देशी।

रूढ़ शब्द

यहाँ तक तो हमारी दृष्टि उनके बाह्य आकार पर ही टिकी रहती है। इससे कुछ गहरे स्तर तक पहुंचने पर (उनके शील-स्वभाव-व्युत्पत्ति, बनावट के सम्बन्ध में विचार

करने पर) उन विभक्त नामों में भी कई प्रकार के नाम (शब्द) दिखाई देंगे। कुछ तो ऐसे होंगे जिनकी प्रकृति(धातु-स्वभाव-बनावट) का कुछ प्रत्यय(निश्चय) ही नहीं होता। यदि हो भी जाए तो वे उस अर्थ में प्रयुक्त ही नहीं होते; जैसे—घड़ा, गाय, खाट, झट, पीला घन, गज, घोड़ा आदि। पहले तो इनके खण्ड होते ही नहीं, क्योंकि ये किसी दूसरे शब्द के जोड़ से नहीं बने। यदि इनके खण्ड 'घ' और 'ड़ा' 'गा' और 'ट' 'झ' और 'ट' 'पी' और 'ला' आदि बना भी लिए जाएँ तो इनसे कोई अर्थ ही नहीं निकलता। ये निरर्थक हैं, सार्थक नहीं। यदि खींचातानी से इनसे अर्थ निकाल भी लिया जाए तो ये सर्वत्र उस अर्थ में प्रयुक्त ही नहीं होते, जैसे—'घट' (संघाते) धातु का 'घड़ा' बना लें और 'गम्' (गतौ) का 'गाय'; तो इनका अर्थ होगा घड़ा=घड़ा हुआ पदार्थ, गाय=चलने वाली चीज। सब पदार्थ घड़े हुए हैं, पर उन्हें कोई 'घड़ा' नहीं कहता और असंख्येय जड़-चेतन पदार्थ चलते-फिरते हैं; पर उन्हें कोई गाय नहीं कहता। अब इनका एक-एक विशेष अर्थ में ही चलन हो चुका है। उस अर्थ में ही इनका संकेत गृहीत होता है, इसलिए ऐसे शब्दों को साहित्य-संसार में 'रूढ' कहते हैं।

यौगिक शब्द

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनके प्रत्यय की पूरी-पूरी पहचान हो जाती है अर्थात्—किस धातु और किस प्रत्यय के योग से ये बने हैं, इनके खंड (टुकड़े) भी हो जाते हैं; और वे (खण्ड) भी सार्थक भी होते है, निरर्थक नहीं। जैसे—'कतरनी' 'लड़कपन' 'पूजक' 'पानवाला' 'बुद्धिमान्' 'घुड़चढ़ा' 'पाठशाला' आदि। इनमें का 'कतरनी' शब्द ही लीजिए, इसके दो खण्ड किए जा सकते हैं 'कतर' और 'नी'। 'कतर' धातु है; जिसका अर्थ है काटना, और 'नी' प्रत्यय है, जिसका अर्थ है करण (साधन)। दोनों खण्डों को मिलाकर अर्थ होता है कतरनी=काटने का साधन। इसी प्रकार 'लड़कपन' आदि शब्दों में पन, क, वाला, मान् आदि प्रत्यय हैं, जो सार्थक है। 'घुड़चढ़ा' 'पाठशाला' आदि समस्त पद हैं। इनके दोनों खण्ड सार्थक हैं। जिनका अर्थ है—'घुड़=घोड़े पर, चढ़ा=चढ़ा हुआ, 'पाठ=पढ़ने का, शाला=घर (स्थान)। भाव यह कि जिन शब्दों के दोनों खण्ड सार्थक हों उन्हें साहित्य-संसार में 'यौगिक' कहते हैं।

योगरूढ़ शब्द

कुछ शब्द ऐसे भी हैं; जिनके दोनों खण्ड सार्थक होते हैं, पर वे जहाँ-जहाँ उन खण्डों के अर्थ मिलते हों, वहाँ-वहाँ यौगिक शब्दों की भाँति प्रयुक्त नहीं होते। जैसे हम सभी पान बेचने वालों को 'पानवाला' तो कहते हैं; पर सभी चार पाँव वालों को 'चारपाई' नहीं कहते। जबकि उनके भी चार-चार पाँव होते हैं। अंगों पर रखे जाने वाले सभी वस्त्रों को हम 'अँगरखा' नहीं कह सकते; और न ही पंक=कीचड़ से ज= पैदा होनेवाले जोंक, मेंढक, आदि जन्तुओं को 'पंकज' ही कहा जाता है। ये शब्द यौगिक होते हुए भी अपने एक-एक अर्थ में ही रूढ रहते हैं। चारपाई=खाट, अँगरखा=खुला लम्बा पहरावा, पंकज=कमल आदि। इसलिए ऐसे शब्द साहित्य-

संसार में 'योगरूढ़' कहे जाते हैं। तात्पर्य यह कि व्युत्पत्ति (बनावट) के कारण शब्दों के पुनः तीन भेद हो जाते हैं; १—रूढ़, २—यौगिक, और ३—योगरूढ़।

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी हैं; जो अपनी अर्थभूमि छोड़ कर दूसरे शब्दों की अर्थभूमि पर ही अधिकार जमाए बैठे हैं, जैसे—'उद्दार' उस बैल का नाम है, जो आर=बैल हांकने के लिए डंडे के मुख पर लगाई हुई तीखी कील—से उद्=दूर निकल गया हो, अर्थात्—इतना चलने वाला हो कि आर लगने ही न दे, और 'धुरन्धर' उस बैल नाम है; जो धुर=बैलगाड़ी का जुआ, धर=उठाता हो। पर अब ये शब्द पशुवृषभों के लिए नहीं, किन्तु नरवृषभों के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। 'नर-वृषभ' में 'वृषभ' शब्द श्रेष्ठता का वाचक है एवं—नरसिंह, नरकुञ्जर, नरशार्दूल, नरव्याघ्र आदि पदों में भी सिंह, कुञ्जर आदि शब्द श्रेष्ठता के वाचक हैं।

आपको ऐसे भी कुछ शब्द मिलेंगे, जो अपने साथ अपनी कोई न कोई कथा भी लपेटे रहते हैं। मधूकड़ी (रोटी), बरवै (एक छन्द), तस्मै (खीर), टेढ़ी खीर (कठिन), सूरदास (अन्धा), आदि शब्द इस श्रेणी के हैं। जिस प्रकार मधुकर (भ्रमर) एक-एक फूल से थोड़ा-थोड़ा रस लेता फिरता है। किसी फूल को कुछ बाधा नहीं पहुँचाता उसी प्रकार संन्यासी के लिए भी विधान है कि वह निर्धूम तथा अप-रिचित सात घरों मे जाकर भिक्षा मांगे। किसी पर भार न बने। यह चर्या 'मधुकरी वृत्ति' कहलाती है। धीरे-धीरे यही 'मधुकरी वृत्ति' भिक्षा का नाम पड़ गया। 'भिक्षा कर आए' के स्थान पर 'मधुकरी कर आए' कहने लगे। आगे चलकर 'मधुकरी कर आए' न बोलकर 'मधुकरी ले आए' बोलने लगे। अब 'मधुकरी' रोटी का पर्याय बन गया। ह्रस्व को दीर्घ और 'र' को 'ड़' करने मे क्या देर लगती थी। झट 'मधुकरी' का 'मधूकड़ी' बना लिया गया; 'कंकर' का 'कंकड़' बनता ही आया है।

'बरवै' एक छन्द का नाम है। कहते हैं कि रहीम की प्रेयसीने उसे ये दो पंक्तियाँ लिखकर भेजी थीं—

"प्रेम-प्रीति को बिरवा, चल्यो लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय॥"

रहीम जी इन पंक्तियों में के 'बिरवा' शब्द पर इतने लट्टू हो गए कि उन्होंने इसके नाम पर 'बरवै' छन्द ही बना डाला और लिख डाला इसी छन्द मे 'बरवै नायिकाभेद'।

मुझे तो जो खीर को 'तस्मै' कहा जाता है; उसकी भी कुछ ऐसी ही कथा जान पड़ती है। ब्राह्मण लोग भोजन और भजन के समय बोला नहीं करते। अधिक आव-श्यकता पड़ने पर देववाणी (संस्कृत) मे कुछ बोल-चुला लेते हैं। पहले-पहल यह 'तस्मै क्षीरं दीयताम्' (उसे खीर दो) होगा। संक्षेप में इसे 'तस्मै दीयताम्' कहते होंगे। धीरे-धीरे 'कर्म' और 'क्रिया' दोनों उड़ा दिए गए; रह गया 'तस्मै' सम्प्रदान। अब यह सम्प्रदान से 'कर्म' बन गया है। इसलिए साधु लोग बोलते हैं 'अजी! आज तो तस्मै

(खीर) घुट रही है'। 'टेढ़ी खीर', सब अन्धों को 'सूरदास' कहना आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं।

मनुष्य सदा अपने तथा अपनों को दूसरों की अपेक्षा कुछ उत्कृष्ट देखना चाहता है। यदि यह उसकी अभिलाषा काम से नहीं सिद्ध होती तो नाम से ही सही। चाहे वह अपना सारा जीवन दूसरों की चाटुकारिता में ही बिताए, पर अपने पुत्र का नाम तो 'कुबेर' या 'लखपत' ही रखेगा। अधेड़ उमर की किसी औरत को 'माई' कहकर तो देखिए यदि उसका पारा न चढ़े तो कहना। कारण कि वह सदा अपने को 'नित्य-यौवना' ही देखना चाहती है। भले ही वह शूर्पणखा की बहन हो; पर आप उसकी प्रसंशा के झूठे-सच्चे दो-चार शब्द कह दीजिए; बस, आपसे बढ़कर उसकी दृष्टि मे कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं होगा। वह अपनी सन्तान का नाम रखेगी—रजनीकान्त, कमलनयन, उषासुन्दरी, प्रेमलता, मोहिनी, आदि। ठीक भी है भाई! काञ्चन-कामिनी-कीर्ति का मोह किसने छोड़ा है? नाम-रूप को मिथ्या पुकारने वाले लोग भी तो अपने साथ लंगूर की-सी नाम की लम्बी पूँछड़ी लगाए ही फिरते हैं। अस्तु।

प्रत्येक देहधारी के साथ 'मैं सदा जीता रहूँ और कभी न मरूँ' यह अभिनिवेश लगा ही हुआ है। इसलिए वह अप्रिय और अशुभ पदार्थों को भी सदा प्रिय और शुभ रूप मे ही देखना चाहता है। यद्यपि यह उस अशुभ और अप्रिय पदार्थों को वस्तुतः शुभ और प्रिय बना नहीं सकता, तो भी वह उनके नाम तो बदल ही लेता है, अर्थात्—अमांगलिक वस्तुओं से भी मंगल की भावना कर लेता है, जैसे—मरने को 'स्वर्गवास' गंगालाभ, साकेतवास आदि, साप को 'बाबा' पेशाब को 'लघुशंका' टट्टी को 'शौच' दीया बुझाने को दीया बढाना' (एवं—दुकान बढ़ाना, चूड़ियां बढाना आदि) मेहतर लोग भी अपने काम को 'कमाना' ही कहते हैं। विवाह के दिनों मे 'नाई' को 'राजा' और 'कुम्हार' को 'प्रजापति' बोलते हैं। ये सब 'मंगलभाषित' कहलाते है।

सब मंगल-भाषियों मे भय, अनिष्ट की आशंका, घृणा आदि में से कोई न कोई भाव रहता ही है। पर कुछ स्थानों पर हम भय आदि के बिना भी किसी विशेष प्रयोजन के लिए ऐसे शब्द प्रयुक्त कर जाते हैं जो वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं, जैसे—मूर्ख को 'पण्डित' मनुष्य को 'गधा' निर्बल को 'भीम' दुष्ट को 'साधु' किसी पुंश्चली को 'सती सावित्री' या 'सती सीता' आदि यह विपरीत लक्षणा, व्यंजना या व्यंग्य कहाता है।

मतलब यह कि हमारे पास एक भी शब्द ऐसा नहीं होना चाहिए; जिसके कुल शील (प्रकृति-प्रत्यय आदि) के सम्बन्ध में हम कुछ न जानते हों। नीति ठीक ही तो कहती है कि—

"अज्ञात-कुल-शीलस्य वासो न कस्यचित्"

४

* * *

लेखक-कर्म की कठिनाई

यद्यपि भाषा अपने विचार दूसरों पर प्रगट करने और दूसरों के विचार समझने का सबसे सुगम तथा अभ्रान्त साधन है, तथापि इसके लिखने और बोलने में बहुत ही सावधानता की अपेक्षा रहती है। किसी एक अक्षर पर थोड़ा-सा बल दे देने से ही कुछ-का-कुछ (भूत की आज्ञा और आज्ञा का भूत) बन जाता है। 'बना' शब्द में दो अक्षर हैं। इनमें के पहले अक्षर 'ब' पर जरा जोर दे दीजिए; =स्वराघात कर दीजिए; अर्थ होगा 'भूतकाल'; जैसे–"बहुत अच्छा भोजन बना", एवं–दूसरे अक्षर 'ना' पर स्वराघात कर देने से अर्थ होगा 'आज्ञा'; जैसे–"रोटी बना"। यहाँ तो एक ही शब्द के एक-एक अक्षर पर स्वराघात हुआ है। कहीं-कहीं तो वाक्य में पूरे शब्द पर स्वराघात किया जाता है–बल दिया जाता है, जैसे—

'वह वहाँ है'—(वहाँ वही है और कोई नहीं) 'वह वहाँ है'–(वह वहीं है, किसी दूसरी जगह नहीं) 'वह वहाँ है' (उसका वहाँ होना निश्चित है)। 'वह आएगा' यह एक सामान्य विधि वाक्य है। इसके उच्चारण में किंचित् स्वर-भेद कर देने मात्र से प्रश्न वाक्य बन जाएगा 'वह आएगा ?' संस्कृत का एक श्लोक है—

"यद्यपि बहु नाधीषे, तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत्, सकलं शकलं, सकृत् शकृत् ॥"

अर्थात्—बेटा ! यदि बहुत नहीं, व्याकरण तो अवश्य ही पढ़ लेना; क्योंकि कहीं स्वजन का श्वजन, सकल का शकल और सकृत् का शकृत् न बन जाए, (स्वजन=बन्धु, श्वजन=कुत्ता, सकल=सम्पूर्ण-सारा, शकल=खण्ड-एक हिस्सा, सकृत्=एक बार, शकृत=विष्टा-टट्टी)।

यहाँ तक तो हुई उच्चारण (बोलने) की बात। लिखना तो बोलने से भी कुछ टेढ़ी खीर है। जरा-सी कलम दबी कि 'कुत्ती' का 'कुन्ती' बना। दाईं ओर जरा हाथ घूमा कि 'दिन' का 'दीन' बना। 'वेद' का 'खेद' बना डालना तो बाएँ हाथ का खेल

है। इन्हीं बातों से तंग आकर किसी ने कह ही डाला कि 'शतं वद, मा लिख' अर्थात्—सौ बातें भले कह जाओ, पर लिखो मत।

निस्सन्देह लिखना बोलने की अपेक्षा कहीं अधिक दायित्वपूर्ण तथा कठिन काम है। सरकारें जब अपना-अपना विधान बनाती हैं, तो न जाने उन्हें कितना फूंक-फूंककर पाँव रखना पड़ता होगा, यह तो वही जानती हैं। किसी एक विषय का पूरा-पूरा ज्ञान होने पर भी उस विषय का लेखक नहीं कहलाया जा सकता। लेखक बनने के लिए तो अभ्यास की परम आवश्यकता है। वह भी कोई दो-चार दिनों का ही नहीं "स तु दीर्घकाल-नैरन्तर्य-सत्कारासेवितो दृढभूमिः" (योगदर्शन) अर्थात् बिना नागा मनोयोगपूर्वक लम्बे समय तक चलते रहने पर ही अभ्यास पक्का बनता है।

लेख कितना भी शुद्ध क्यों न हो; यदि उसमें अक्षर उनके अपने नियत स्थान से अणुमात्र भी इधर-उधर लिखे जाएँगे तो अर्थ का अनर्थ या अर्थान्तर हुए बिना नहीं रहेगा। जैसे—

१–'दशरा मरारा:'—दश राम-शरा:

२–'सुन्दरी वादरी वा'—सुन्दरी वा दरी वा

३–'आप भीतर जाएँगे'—आप भी तर जाएँगे

४–'सावन के बादलों,—सावन के बाद लो

५–'कहो तो ला दूं'—कहो तोला दू

६–'वह दयनीय जीव न था'—वह दयनीय जीवन था

७–'लारी ! ला'—ला री ला

८–'मनन करेगा'—मन न करेगा

९–'ठिकाना जेब में अपने नहीं चार पाई का'—ठिकाना जेब मे अपने नहीं चारपाई का

१०–'राजा की अपना कर सबसे लेना चाहिए'—राजा को अपनाकर सब से लेना चाहिए

११–'सुन्दर कोप नहीं सपने'—सुन्दर की पनही' (जूती) सपने

१२–कुलीन बनो'—कुली न बनो

१३.–'दीवा ना बन'—दिवाना बन

१४–'परदा-रहित'—पर-दारहित' आदि।

आदि के दो उदाहरणों में वर्णों के अपने स्थान से आगे-पीछे हो जाने के कारण कितना अनर्थ हो गया है तथा बाकी के सभी उदाहरणों में अर्थान्तर स्पष्ट ही है।

इसी अनर्थ या अर्थान्तर के कारण ही विराम-चिह्नों की सृष्टि हुई होगी। अब ये विराम-चिह्न अंग्रेजी भाषा में से छायावाद-रहस्यवाद की तरह अपनी हिन्दी में भी आ गए हैं। इनसे लेख में 'स्पष्टता, सुन्दरता और सुबोधता आ जाती है, जैसे—"पकड़ो मत जाने दो" वाक्य में यदि आप किसी को पकड़वाना चाहते हैं तो 'मत' के पहले (पकड़ो के बाद) अल्प विराम लगाना होगा—'पकड़ो, मत जाने दो' और यदि

आप पकड़ने का निषेध करना चाहते हैं तो 'जाने' के पहले (मत के बाद) विराम लगाना होगा—'पकड़ो मत, जाने दो'। 'अब मेरी हँसी नहीं, तेरी हँसी है' 'अब मेरी हँसी, नहीं तेरी हँसी है' 'तुमसे खर क्या पढ़ सकते हैं?' 'तुम-से खर क्या पढ़ सकते हैं?' देखी उस (-) की करामात; आदमी से गधा बना दिया। रामायण के इस सोरठे को—

"फूले फले न बेत, जदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम॥"

आचार्य बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए० ने अपने 'साहित्यालोचन' में प्रकृति-दोष का उदाहरण माना है। क्योंकि बेत का फूलना प्रत्यक्ष सिद्ध है। पर मेरी समझ में यह उनकी भ्रांति है। भ्रांति का कारण है, अल्प विराम का न होना। यदि हम 'फूले' के आगे (बाद) विराम-चिह्न लगा दें तो भ्रांति और दोष के लिए कोई अवसर ही नहीं रह जाता। फूले, फले न बेत, अर्थात्—बेत फूलती तो है, पर फलती नहीं[1]। इसलिए लेख में विराम चिह्नों का पूर्णतया सन्निवेश और पालन होना चाहिए।

विराम चिन्ह

१—अल्प विराम	(,)	५—भावबोधक सम्बोधन चिह्न	(!)
२—अर्ध विराम	(;)	६—निर्देशक चिह्न	(-)
३—पूर्ण विराम	(।)	७—कोष्टक	( ) [ ]
४—प्रश्न-काकु-चिह्न	(?)	८—उद्धरण चिह्न	'......'

पूर्ण विराम (।) के तुरन्त बाद 'और' एवं 'तथा' अव्यय नहीं आते। क्योंकि ये दो वाक्यों के योजक हैं। हाँ, अन्य अर्थ का वाचक और शब्द आ सकता है। यह बात मुझे एक अक्षर-योजक (कम्पोजीटर) से विदित हुई है।

लेखक बनने के लिए इतना ही अलं नहीं। लेखक और राजा को कोश की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना तो वर्णमैत्री (श्रुतिमधुर वर्णविन्यास तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों के साथ मित्रता) हो ही नहीं सकती। क्या नीचे के उदाहरणों की आशा किसी शब्द-दरिद्री से की जा सकती है?

'तर्क-कर्कश-विचार-चातुरी—
का तुरीय-वयसा विभाव्यते।
आतुरी भवति यत्र मानसे—
धातु रोप्सित मपाकरोति कः॥'

'सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मनहुं जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥'

'जो जन-रंजन दुष्ट-विभंजन,
गंजन गर्व 'हरि' सुख धाम है।

[1] मेरे एक बन्धु का कहना है कि बेत फलती भी है। कुछ लोग 'बेत' शब्द का आकाश अर्थ भी करते हैं। पर इसमें चमत्कृति नहीं।

सोई त्रिलोकी को नाथ भलो !
वृषभानु-लली की गली को गुलाम है ॥'
'माई री साँकरी गली में पग काँकरी चुभति है'।

किस पदार्थ के कितने नाम हैं ? उनका लिंग क्या है ? कौन-कौन शब्द अनेकार्थक हैं ? आदि बातों का ज्ञान कोश के द्वारा ही होता है, और कहाँ किस शब्द का कौन-सा अर्थ लेना है, यह बात वक्ता या लेखक के तात्पर्य के अधीन होती है। वक्ता या लेखक का तात्पर्य प्रकरण आदि से ज्ञात होता है; जैसे—'इन्हें जब देखो तब अपने बड़ों की ही याद करते रहते हैं' यदि याद करनेवाला हलवाई है, तो 'बड़ों' का अर्थ होगा 'उड़द की पीठी की गोल टिकियाँ'। यदि याद करनेवाला कोई दूसरा है तो अर्थ होगा बड़े= पूर्वज एवं—'क्या इन पेड़ों के देखने से पेट भर जायगा ?' यदि यह वाक्य बाजार में बोला जा रहा है तो इसका अर्थ होगा 'दूध से बने पेड़े', यदि कोई जंगल में इसका प्रयोग कर रहा है तो इसका अर्थ होगा 'जंगल के वृक्ष'। जहाँ वक्ता या लेखक का तात्पर्य दो-तीन अर्थों से सम्बन्ध रखता है, वहाँ दो-तीन अर्थ ही लिए जाते हैं। उसे 'श्लेष' कहते हैं; जैसे—

'चरण धरत चिन्ता करत, चितवन चारो ओर।
सुबरन ही ढूंढ़त फिरें, कवि-व्यभिचारी-चोर ॥'

कवि—सुबरण=मधुर अक्षर, व्यभिचारी—सुवरण=सुन्दर रूप, चोर—सुवरण=सोना, सदा ढूंढ़ते फिरते हैं। इस पद्य के 'चरण-चिन्ता-चितवन' शब्द भी श्लिष्ट हैं।

कोशों में एक-एक पदार्थ के कई-कई नाम (पर्याय) दिए रहते हैं। हम उन्हें भूल से समानार्थक ही मान बैठते हैं। जो शब्द पहले-पहल हमारे सामने आता है; हम उसे ही वाक्य में बैठाकर छुट्टी पा लेते हैं। यह सोचते तक भी नहीं कि पर्यायों के भी भिन्न-भिन्न भाव होते हैं। जब हम अर्जुन को 'पार्थ' कहते हैं तब हमारा भाव उसकी भीरुता द्योतित करना भी होता है, कारण कि पृथा उसकी माता का नाम है; अर्थात् —माँ पर ही गए न ! 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् !' कहकर तो उसकी रही-सही वीरता भी उड़ा दी गई, बाएँ हाथ में शक्ति ही कितनी होती है। जब हम उसे 'गाण्डीवी' कहते हैं तब हमारा भाव उसकी वीरता, अजेयता आदि द्योतित करना भी होता है, क्योंकि उसका 'गाण्डीव धनुष' अमोघ माना जाता है। जब किसी कवि को राजा की ओर से कुछ नहीं मिलता तब वह राजा को 'पार्थिव' (मिट्टी का माधो) कहकर चलता बनता है। इसलिए शब्दों का चुनाव बहुत ही सोच-समझ कर करना चाहिए। हम यहाँ एकार्थक से प्रतीत होनेवाले कुछ शब्दों के अर्थ देते हैं :

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
महिला—भले घर की स्त्री।		लड़ाई—साधारण लोगों की।	
पत्नी—विधिपूर्वक विवाहिता।		मेल—प्राणियों का।	

शब्द — अर्थ

खेद–मन की क्षणिक अप्रसन्नता।
दुःख–मन की अधिक अप्रसन्नता।
शोक–प्रिय-वियोग-जन्य।
प्रार्थना–कुछ करवाने की इच्छा से कहना।
निवेदन–केवल नम्रतापूर्वक कहना।
आकार–वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई।
रूप–लम्बाई-चौड़ाई सहित वस्तु का रूप-रंग।
युद्ध–सेनाओं का।
विश्व–ब्रह्माण्ड।
सर्व–सब।
अखिल–सम्पूर्ण।
संकर–दूधपानी-सम मिला हुआ।
संसृष्ट–तिलचावल-सम मिला हुआ।
टेढ़ी निगाह–क्रोध से।
तिरछी निगाह–प्रेम से।
उधार–पैसों का।
मंगनी–अन्य चीजों की।
अधिकारी–पद पुरस्कार का।
भागी–दण्ड आदि का।
अनुमोदन–हाँ में हाँ भरना।
समर्थन–दृढ़ीकरण।
अनुसार–क्रिया विशेषण।
अनुरूप–विशेषण।
प्रस्ताव–मन्तव्य।
निबन्ध–किसी विषय पर लेख।
सहज–स्वाभाविक।
सुगम–सरल, आसान।
अच्छाई–उत्तमता।
भलाई–उपकार।
भयंकर–भयप्रद।
भोंडी–भद्दी।
सुखदाता–चेतनों का विशेषण।

शब्द — अर्थ

समानता–अप्राणियों की भी।
आयु–जन्म से मृत्यु तक का समय।
अवस्था–उमर, वय, आयुष्य।
लक्षण–अमूर्त या अदृश्य आकार।
चिह्न–मूर्त या दृश्य।
अधिवेशन–सम्मेलन, जलसा।
बैठक–अधिवेशन में होनेवाली गोष्ठी।
संग्रह–सब चीजों का।
संकलन–विशेष चीजों का।
संसार–जगत्।
सुन्दर–अभिराम।
विहीनता–दुर्गुणों की
राहित्य–अच्छे-बुरों का।
आकृष्ट–खींचा हुआ।
आकर्षित–खींचा हुआ।
विकृत–रूपान्तरित।
दूषित–सदोष।
पवित्र–पावन, निर्मल।
धवल–सुफेद।
खेल–क्रीड़ा।
खिलवाड़–दिल्लगी।
थाना–पुलिस चौकी।
कोतवाली–कोतवाल का दफ्तर।
लिपि–लिखी जानेवाली।
भाषा–बोली जानेवाली।
चित्र–हाथ से बनाया हुआ।
फोटो–यंत्र से खींचा हुआ।
लेख–निबन्ध।
लिखावट–लिखने का ढंग।
बाजार–क्रय-विक्रय का स्थान।
हाट–दूकान।
चीज–वस्तु।
सामान–सामग्री।
कर–लगान।

शब्द अर्थ	शब्द अर्थ
सुखदायक–चेतनों और अचेतनों का विशेषण।	राजस्व–आय, शुल्कादि के रूप में।
आगामी–निश्चित के लिए।	शिक्षा–सीख, उपदेश।
भावी–अनिश्चित के लिए।	अध्ययन–पठन।
अनभिज्ञ–अपरिचित।	राजा–स्वामी, नरपति।
मूर्ख–न समझनेवाला।	शासक–अधिकारी, दण्डदाता।
शुद्ध–निर्दोष।	प्रजा–रैयत।
आचरण–इन्द्रिय-सम्बन्धी।	निवासी–बसनेवाला।
व्यवहार–बरताव।	ऊपर–व्यवहित।
नाती–बेटी का बेटा।	पर–(विभक्ति) सटा हुआ।
पोता–बेटे का बेटा।	दया–पसीजना।
अंश–चौथा या सोलहवाँ हिस्सा।	अनुग्रह–अपनाना।
भाग–कुछ हिस्सा।	निर्वेद–तत्त्वज्ञान
सचाई–वास्तविकता।	दैन्य–दरिद्रता से।
ईमानदारी–विश्वास-पात्रता।	कुछ–सत्ता-सूचक।
पाजीपन–बदमाशी।	कोई–सम्बन्ध सूचक।
नीचता–बुराई।	मद–मादक वस्तु के सेवन से।
मकान–साधारण घर।	उन्माद–काम, शोक आदि से।
कोठी–बड़ा मकान।	गर्व–धन, विद्या आदि से।
चिन्तनीय–विचारणीय।	शंका–अनर्थ की तर्कना।
चिन्ताजनक–चिन्ता पैदा करनेवाला।	असूया–गुणों को अवगुण समझना।
अधिकांश–संज्ञा है।	ईर्ष्या–किसी का लाभ देखकर जलना।
अधिकतर–क्रियाविशेषण है।	विषाद–उपाय के अभाव से उत्पन्न खिन्नता।
छज्जा–दीवार के बाहर निकला हुआ छत का कुछ भाग।	त्रास–बिजली आदि से मनःक्षोभ।
बरामदा–दालान।	कुछ–सारे में से कुछ।
पेड़–बड़े वृक्ष।	कई–बड़ी संख्या में से कुछ।
पौधे–छोटे गुल्म।	आजन्म–जन्म से लेकर।
घोड़ा–अश्व।	आजीवन–जीवनभर।
टट्टू–ठिगना घोड़ा।	हेतु–उद्देश्य।
छड़ी–पतली लकड़ी।	कारण–निमित्त।
डण्डा–मोटा-सोटा।	लगभग–संख्या, समय आदि के लिए।
	प्रायः–अधिकतया।

एवं चित्त और मन में, अन्तःकरण और बुद्धि में, भक्ति और श्रद्धा में, प्रेम और अनुराग में, स्नेह और प्यार में, आशंसन और अभिनन्दन में, आमन्त्रण और

निमन्त्रण मे, अपेक्षा और उपेक्षा में, लज्जा और संकोच में, विधि और विधान आदि में भी अन्तर है।

अशुद्ध शब्दों के प्रयोगों के कुछ उदाहरण

१. अपने सुन्दर भावों को सुन्दर ढंग से सुन्दर भाषा में लिखकर प्रगट कर देने का नाम ही 'लेखनकला' है।
२. यहाँ उसे न रखना भयंकर त्रुटि है, बड़ा भारी दोष है।
३. नवीन लेखक जान-बूझकर बीहड़ शब्द देते हैं।
४. उनकी रचना वैसी विकृत हो जाती है जैसी भयंकर नाक से शूर्पणखा की आकृति।
५. रचना में अश्लीलता अत्यन्त भयंकर दोष है।
६. पूजो देश के धवल चरण।
७. आर्यपुत्र मूच्छित होकर पृथ्वी के ऊपर पड़े हुए हैं।
८. उसकी नीची नजर से तो पुरुष की गर्दन ऊपर रहती है।
९. हम 'सजा' और 'शुरू' को सहज समझते है और 'दण्ड' तथा 'आरम्भ' को कठिन। मुश्किल तो हमारे सहज होता है।
१०. शुद्ध और संकर समस्त पद।
११. इस मेले में बहुत पत्नियाँ आई थीं।
१२. मुझे इस बात का शोक है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया।
१३. प्रार्थना है कि आज मेरे भाई का शरीर अच्छा नहीं।
१४. निवेदन है कि मुझे एक पुस्तक दिलवा दें।
१५. आज पुस्तक छपे आकार मे देखकर प्रसन्नता हुई।
१६. इस नाले का रूप पहले से बहुत बढ़ गया है।
१७. इन दोनों पुस्तकों में बहुत मेल है।
१८. डाकुओं और ग्रामीणों में युद्ध।
१९. इस समय मेरी आयु बीस वर्ष की है।
२०. राजपुरुषों ने प्रजा से राजस्व वसूल किया।
२१. महात्मा गांधी, तेज बहादुर सप्रू और सरोजिनी नायडू की याद वास्तव में बहुत दुःखदायी है, क्योंकि बहुत अर्से तक उनके स्थानों की पूर्ति नहीं हो सकती।

१. सुन्दर भाषा (शुद्ध भाषा), २. भयंकर (महान्), बड़ा भारी (अक्षम्य), ३. बीहड़ (जटिल, कठिन), ४. विकृत (दूषित, भद्दी), भयंकर (भोंडी), ५. भयंकर (अक्षम्य), ६. धवल (पवित्र), ७. ऊपर (पर), ८. ऊपर (ऊँची), ९. सहज (सुगम-सरल), १०. संकर (संसृष्ट), ११. पत्नियां (स्त्रियां), १२. शोक (खेद), १३. प्रार्थना (निवेदन), १४. निवेदन (प्रार्थना), १५. आकार (रूप), १६. रूप (आकार), १७. मेल (समानता), १८. युद्ध (लड़ाई) १९. आयु (अवस्था, उमर), २०. राजस्व (कर, लगान), २१. याद (अभाव)।

वास्तव में कोश का काम नाम और उसके लिंग का निर्णय करना है, क्योंकि इसका नाम ही 'नामलिंगानुशासन' है।

आचार्य रामचन्द्रजी वर्मा एक स्थान पर लिखते हैं कि "साधारणतः हिन्दी भाषा के दो रूप माने जाते हैं—एक पश्चिमी, दूसरा पूर्वी। कुछ कारणों से शब्दों के पश्चिमी रूप और पश्चिमी शब्द ही अधिक अच्छे माने जाते हैं; और हिन्दी में अधिकतर वे ही चलते हैं" कितना अच्छा होता यदि आप उन कारणों का निर्देश भी कर जाते। लिंग की चर्चा करते हुए आप कहते हैं कि "पश्चिम वाले इस विषय में अपेक्षाकृत अधिक सतर्क रहते हैं" आदि। परन्तु 'लिंग के सम्बन्ध में मैं अपने विचार लिख देना ही आवश्यक समझता हूँ। आशा है विद्वान लोग इस पर विचार करेंगे।

हिन्दी व्याकरणों में स्त्रीलिंग बनाने के जो नियम दिए गए हैं, उनके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना (कोई आपत्ति नहीं।)पर "हिन्दी भाषा में लिंग का विषय बहुत ही जटिल है" (वर्मा जी) यह मैं नहीं मान सकता। संस्कृत वाले भले यह बात कहें, क्योंकि उनके यहाँ कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो न तो स्त्रियों का ही काम दे सकते हैं और न पुरुषों का। पर हिन्दी वाले यह बात कैसे कह सकते हैं? इनके यहाँ तो यह झगड़ा नहीं। वर्मा जी स्वयं मानते हैं कि "पश्चिम वाले इस विषय में कुछ (बहुत) अधिक सतर्क रहते हैं।" फिर क्यों न हम जिन कारणों से हिन्दी का पश्चिमी रूप अपनाया है; उन्हीं कारणों से पश्चिमी लिंग भी अपना लें। सब जटिलता दूर हो जाएगी। हिन्दी वाले 'जामुन, तार, गेंद, दही, गेहूँ' आदि शब्दों को पुलिंग मानते हैं और 'पिस्तौल, नाक, थूक' आदि शब्दों को स्त्रीलिंग। पर पश्चिम वाले जामुन आदि शब्दों को स्त्रीलिंग और पिस्तौल आदि शब्दों को पुलिंग मानते हैं। जो सर्वथा युक्ति-युक्त है। 'जामुन' शब्द स्त्रीलिंग है। इसका पुलिंग 'जमोआ' होता है, जो रूप-रंग में जामुन जैसा ही होता है। इसके फल जामुन के फलों की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं तथा लगभग बीस-पच्चीस दिनों का अन्तर इनके पकने में रहता है। पतली तथा लम्बी होने के कारण 'तार' दूध की धार के साथ बैठती है। रबड़, फूल, कपड़े आदि की कोमलांगी लाड़ली 'गेंद' पत्थर के कठोर गोले से आँख तक भी नहीं मिलाती, भले ही वह देखने में इसके आकार-प्रकार का हो। 'मूंग-उड़द' 'ज्वार-बाजरा' 'गेहूँ-जौ' या 'गेहूँ-चने' 'मक्की' आदि को लीजिए। सहजन्मा होने के कारण इन्हें आप 'बहन-भाई' समझिए या साहचर्य के कारण 'पति-पत्नी', हैं ये भिन्न-भिन्न जाति के ही। काले-कलूटे फुल-वैरी वाले उड़दों के साथ हरे रंग वाली 'मूंग' की क्या समानता? गौरांगी रक्तवदना 'ज्वार' के सामने सीमेण्ट-मार्का 'बाजरा' कैसे आ सकता है? गलग्राह कर्कश-कलेवर 'जौ' को मार्किट में भगवती गौरवर्णा, मृदुस्पर्शा, मृदुपाका, मृदुस्वादा, 'गेहूँ' के सामने कौन पूछता है? प्रकृति देवी ने इसे नाम से ही नहीं, आकार से भी इस पर कुछ गहरी रेखा खींचकर 'स्त्रीलिंग' बना दिया है। स्वर्णवर्णा रूपगर्विता 'मक्की' तो अभी तक कुमारी ही है। निहंग लोग इसका 'वसन्तकौर' 'वसन्तकुमारी' कहकर सम्मान करते हैं। 'दही' भी मक्खन की माँ होने के कारण या बार-बार दूध औटाने से बनी होने के

कारण 'कढ़ी' 'खीर' के साथ ही मेल खाती है।

'पिस्तौल' बन्दूक का छोटा भाई होने कारण स्त्रीलिंग से सदा दूर भागता है। 'थूक' भी लार का बड़ा भाई होने के कारण मुख में ही रहता है। 'चूक' के साथ बैठने की कभी चूक नहीं करना। यदि 'ऊक' मात्र देखकर चूक के साथ 'थूक' को बैठाइएगा तो 'सन्दूक' साहब भी एकदम आ कूदेंगे। 'नाक' भी 'कान' के साहचर्य से समझिए या 'हीरा' 'राही' वर्णविपर्यय से, पर है पुलिंग ही। भावार्थ यह कि "जिन वस्तुओं में प्रधानतया, कोमलता, लघुता, दीर्घता, कृशता, सुन्दरता, आदि गुण हों वे स्त्रीलिंग ही होती हैं।"

किसी शब्द का सही-सही अर्थ और सही-सही लिंग जान लेने पर भी यों ही जहाँ-तहाँ बैठाया नहीं जा सकता। 'दाता' और 'दायक' एक ही दानार्थक 'दा' धातु से बने हैं तथा कर्ता अर्थ मे दोनों प्रत्यय आए हैं। लिंग का भी ज्ञान है। पर "यह स्थान बहुत सुखदाता है" से "यह स्थान बहुत सुखदायक है" लिखना या बोलना अच्छा लगता है। क्यों? यही तो शब्दों की प्रकृति (स्वभाव) है, जो अवश्य जानना चाहिए। 'यह स्थान अत्यन्त सुखद है" बोलना तो उससे भी हलका तथा श्रुतिमधुर है। कारण? इसमें विशेष्य-विशेषण का वजन बिलकुल बराबर है। दोनों ही तीन-तीन मात्राओं के हैं। 'आरम्भ' और 'अन्त' शब्द का अर्थ सब लोग जानते हैं। पर "निबन्ध के अन्त में निबन्ध के आरम्भ का ही निचोड़ रहता है" मे जैसे 'अन्त' शब्द ठीक-ठिकाने पर है, वैसे "लिखने वाले ने सब बातें ठीक तरह से कह दी है और अब स्वयं उनका अन्त कर रहा है" मे 'अन्त' शब्द के स्थान पर 'समाप्ति' शब्द ही ठीक ठिकाने का कहा जाएगा। हाँ, "इस दूषित प्रवृत्ति का अन्त होना ही चाहिए" में 'अन्त' शब्द बिलकुल यथास्थान सुप्रयुक्त है। इसीलिए तो कहा है—

"लेख को पन्थ करार महा तरवार की धार पे धावनो है।"

५

• • •

प्रकृति प्रत्यय का समन्वित प्रयोग

कोश की सहायता से यह तो हम जान लेते हैं कि अमुक शब्द का अमुक अर्थ और अमुक लिंग है, पर शब्दों के आगे भी 'को' 'ने' आदि चिह्न लगे रहते हैं; जो प्रत्यय या विभक्तियाँ कहलाते हैं। ये जिसके उत्तर (आगे) होते हैं, उसे प्रकृति कहते हैं। प्रत्यय सदा प्रकृति के अव्यवहित उत्तरवर्ती रहते हैं। "उसी आदमी, जो आपके पास जाएगा, को यह पुस्तक दे दीजिए" "उसी स्थान, जहाँ आप मुझे मिले थे, पर यह घटना हुई थी" यहाँ 'आदमी' और 'स्थान' के तुरन्त बाद क्रमशः 'को' और 'पर' आना चाहिए। प्रकृति के बिना प्रत्यय का और प्रत्यय के बिना प्रकृति का कुछ अर्थ नहीं होता; केवल पागलों का-सा प्रलाप होता है। किस शब्द का किस शब्द के साथ कौन सम्बन्ध है, यह प्रत्ययों से ही ज्ञात होता है। वक्ता या लेखक क्या कहना चाहता है, इसका प्रत्यय (निश्चय) प्रत्यय ही कराते हैं। "शत्रुओं ने नगर पर चार टन गोले बरसाए" कहने से वक्ता या लेखक का भाव होगा कि सब गोले मिलकर तौल में चार टन थे। यदि "शत्रुओं ने नगर पर चार टन के गोले बरसाए" होगा तो तात्पर्य निकलेगा कि बरसने वाला प्रत्येक गोला चार टन का था एवं 'हमारे मकान नहीं' (हमारा कोई जहाँ मकान नहीं) 'हमारा मकान नहीं' (किसी दूसरे का मकान है) 'यह घड़ी कितने की लाए' (इसका निश्चित मूल्य क्या है ?) 'यह घड़ी कितने में लाए' (इसके मूल्य की सीमा क्या है ?) 'चार दिनों पर आए' (चार दिनों के बाद) 'चार दिनों में आए' (चार दिनों के भीतर) 'लंका भारत से दक्षिण है' (भारत के बाहर है)। 'कुमारी अन्तरीप भारत के दक्षिण है' (भारत के अन्तर्गत है)। यद्यपि यह विषय अर्थ और लिंग की अपेक्षा कुछ सूक्ष्म है, तथापि थोड़ा मनोयोग देने पर—अन्तर्मुख होने पर—अवश्य सुगम हो जाता है। केवल 'सात' तो विभक्तियाँ हैं। यदि एक-एक विभक्ति को सात-सात दिन दे दिए जायँ तो निस्सन्देह हम उनञ्चास दिनों में ही विभक्तियों का निर्भ्रान्त प्रयोग करने लग जाएँगे। अब विभक्तियों पर कुछ विचार किया जाता है।

प्रथमा विभक्ति

पुंलिंग में—राम है, राम हैं। घोड़ा है, घोड़े हैं। हरि है, हरि हैं। धोबी है, धोबी हैं। साधु है, साधु हैं। डाकू है, डाकू हैं। दुबे है, दुबे हैं। बरें है, बरें हैं। माधो है, माधो हैं। जौ है, जौ हैं।

स्त्रीलिंग में—पुस्तक है, पुस्तकें हैं। बाला है, बालाएँ हैं। मति है, मतियाँ हैं। नदी है, नदियाँ हैं। धेनु है, धेनुएँ हैं। बहू है, बहुएँ हैं। सेव है, सेएँ हैं। गौ है, गौएँ हैं।

विशेष वक्तव्य—प्रथमा विभक्ति का कोई चिह्न नहीं होता। होता भी हो तो वह सदा लुप्त रहता है। 'रीतियें' 'विधियें' आदि लिखना सर्वथा अशुद्ध है।

द्वितीया विभक्ति

पुंलिंग में—राम को, रामों को। घोड़े को, घोड़ों को। हरि को, हरियों को। धोबी को, धोबियों को। साधु को, साधुओं को। डाकू को, डाकुओं को। दुबे को, दुबेओं को। बरें को, बरेंओं को। माधो को, माधोओं को। जौ को, जौओं को।

स्त्रीलिंग में—पुस्तक को, पुस्तकों को। बाला को, बालाओं को। मति को, मतियों को। नदी को, नदियों को। बहू को, बहुओं को।

विशेष वक्तव्य—द्वितीया विभक्ति का चिह्न 'को' है। यह कर्म के आगे (बाद) आता है। जिस पर कर्ता की क्रिया का फल पड़े, वह कर्म होता है। पर 'को' चिह्न सभी कर्मों के साथ नहीं जोड़ देना चाहिए। जो कर्म सजीव तथा महान् हों उन्हीं के साथ 'को' लगाना चाहिए, जैसे—'राम रावण को मारता है' 'भगवान् को भजो, आदि। निर्जीव तथा क्षुद्र कर्मों के साथ 'को' शोभा नहीं देता। वह पत्र (को) लिखता है' 'वह कीड़ियाँ (को) मारता है' 'मैं अपना नौकर (को) आपके पास भेज दूंगा' आदि। कभी-कभी कर्म पर जोर देने के लिए 'को' अवश्य जोड़ना पड़ता है; जैसे 'मैं अपने नौकर को आपके पास भेजूंगा' अर्थात्—मैं या कोई दूसरा नहीं आ सकेगा। सर्वनाम शब्दों के द्वितीया विभक्ति में दो-दो रूप बनते हैं; तुझको—तुझे, तुमको-तुम्हें। मुझको-मुझे। हमको-हमें। उसको-उसे। उनको-उन्हें। इनमें का दूसरा रूप ही शिष्टसम्मत माना जाता है, पर कविता (पद्य) में इनका पहला रूप भी ठीक बैठ जाता है। जैसे—'आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना' 'हम गम को खा रहे हैं गम हमको खा रहा है।'

नीचे के प्रयोगों में 'को' खटकता है—

१. उन्होंने इसी भाषा को पढ़ाया है।
२. यह कविता कई एक भावों को प्रगट करती है।
३. फल को खूब पका होना चाहिए।
४. उन्होंने इस सटीक ग्रन्थ के अनुवाद को लिखा।

५. कवियों पर लगे हुए कलंक को धो डालो।
६. उसने ऊपर को देखकर कहा।
७. इस ग्रंथ को कई हकीमों ने बनाया था।
८. इस औषध को जल में घोलकर पिलाओ।

इस 'को' की खटक मिटाने के लिए पहले हमें अपना वाक्य 'को' के बिना बनाना चाहिए। यदि वाक्य ठीक बन जाए तो साधु। अन्यथा 'को' जोड़ देना चाहिए।

१. उन्होंने यह भाषा पढ़ाई है।
२. यह कविता कई एक भाव प्रकट करती है।
३. फल खूब पका हुआ होना चाहिए।
४. उन्होंने इस सटीक ग्रन्थ का अनुवाद लिखा।
५. कवियों पर लगा हुआ कलंक धो डालो।
६. उसने ऊपर देखकर कहा।
७. यह ग्रन्थ कई हकीमों ने बनाया था।
८. यह औषध जल मे घोलकर पिलाओ।

नीचे के उदाहरणों में 'को' का दुरुपयोग किया गया है—

१. वह प्रत्येक प्रश्न को (का) वैज्ञानिक ढंग पर विश्लेषण करने का पक्षपाती था।
२. उनको (की) समझौते की इच्छा नहीं थी। (प्रकरण के अनुसार 'को' भी ठीक है)
३. हिन्दी सीखने वालों को (के लिए) यह उत्तम सहायक ग्रन्थ है।
४. मैं पण्डित नहीं, जो आपको (से) कुछ कह सकूं।
५. कांग्रेस को (के लिए) ६० प्रतिशत वोट पड़े।
६. गाय को (के लिए) भूसा करके पानी पीऊँगा।
७. वह इस बात को लेकर (के कारण) दिन-रात रोता रहता है।
८. इस विषय को लेकर (पर) उनमे मतभेद हो गया।

यह 'को लेकर' बहुत ही भद्दा प्रयोग है। इससे सर्वथा बचे रहना चाहिए।

१. रामको जाना है (कर्ता मे)।
२. राम को सुख हुआ (कर्म मे)।
३. रामको पुस्तक दो (सम्प्रदान में)।
४. 'भक्तन को मन भावतो' (संबंध में) ब्रजभाषा।
५. रात को जाएगा (अधिकरण के एक अंश में)।

यहाँ के सभी 'को' शुद्ध हैं।

तृतीया विभक्ति

द्वितीया विभक्ति के 'को' के स्थान पर 'ने' और 'से' रखते जाइए। बस, तृतीया के रूप बनते जाएंगे। तृतीया 'कर्ता' और 'करण' में आती है। क्रिया करने वाला 'कर्ता' होता है। 'कर्तृ' तृतीया का चिह्न 'ने' है और 'करण' तृतीया का 'से'। यह 'ने' भी तभी आता है; जब सकर्मक धातु की भूतकालिक कृदन्ती क्रिया का योग हो। जैसे 'राम ने पुस्तक पढ़ी' 'भक्त ने भगवान को पुकारा' आदि। 'मैंने हँस दिया' 'मैंने नाचा' आदि प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है। 'मैं हँसा या हँस पड़ा' 'मैं नाचा' होना चाहिए। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्ता भी करण के समान प्रयुक्त होता है। इसलिए उसके साथ भी 'से' चिह्न ही लगता है। वह भी जहाँ निषेध करना हो वहीं। जैसे—'मुझसे रोटी नहीं खाई जाती' (कर्मवाच्य) 'मुझसे सोया नहीं जाता' (भाववाच्य) आदि। 'मुझसे खाया जाता है' 'मुझसे सोया जाता है' आदि शिष्ट प्रयोग नहीं माने जाते।

क्रिया का साधन 'करण' होता है। उसके साथ सदा 'से' चिह्न ही लगता है। जैसे—'बाण से रावण को मारा' 'मुंह से बोलता है' 'रथ से आता है' आदि।

विशेष वक्तव्य—आजकल इस 'से' का बहुत ही अशुद्ध प्रयोग किया जा रहा है। अत्यन्त सावधानता से इसका प्रयोग करना चाहिए। नीचे के उदाहरणों में 'से' ठीक ठिकाने पर नहीं।

१. आप की राय से यह काम जरूरी है ('में' होना चाहिए)।

२. फिर कुछ देर से उसने कहा ('के बाद' होना चाहिए)।

३. उसे कान से पकड़कर उठा दिया (पकड़ने का साधन तो हाथ है, कान नहीं। इसलिए होना चाहिए 'उसे कान पकड़ कर उठा दिया')

कुछ लोग 'से' के स्थान पर 'सहित' 'के साथ' 'द्वारा' और 'मार्फत' लिख जाते हैं, जो बहुत ही भ्रामक होते है। 'मैं आपकी पुस्तक धन्यवाद के साथ या सहित लौटाता हूं' का तो अर्थ होगा कि धन्यवाद भी लौटाया जा रहा है। जहां दो या अधिक वस्तुओं का साहचर्य होता है, साथ-साथ रहना पाया जाता है; वहीं 'साथ' और 'सहित' का प्रयोग होना चाहिए। इसलिए 'धन्यवादपूर्वक लौटाता हूँ' ही लिखना और बोलना चाहिए। 'वह प्रेम के साथ पढ़ रहा है' का तो यही अर्थ होगा कि प्रेम और वह दोनों साथ-साथ पढ रहे हैं। 'वह प्रेम से पढ़ रहा है, कहना भी उतना अच्छा (निर्भ्रान्त) नहीं जितना 'प्रेमपूर्वक' कहना है। इससे तो यह भी भ्रांति हो सकती है कि 'प्रेम' किसी व्यक्ति का नाम है, जिससे वह पढ़ रहा है। 'रात में शान्ति के साथ सोया था', बोलकर तो झगडा और कलंक मोल लेना है। इसलिए 'शांतिपूर्वक' ही लिखना और बोलना चाहिए।

'से' और 'के द्वारा' के अर्थों में भी महान् अन्तर है, जो 'हमने यह बात उनसे कही थी' और 'हमने यह बात उनके द्वारा कहलाई थी' से स्पष्ट हो जाता है। इसलिए 'हमने यह बात उनके द्वारा सुनी थी' न कहकर 'हमने यह बात उनसे सुनी थी'

ही कहना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरणों में 'से' का प्रयोग साधु कहा जाएगा :

१–वह रोग से दुबला हो गया (हेतु)।
२–मुझे आप से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई (भाव)।
३–घोड़ा दो सौ रुपयों से लिया (मूल्य)।
४–आँख से काणा, कान से बहिरा (अंगविकार)।
५–जटाओं से साधु, बोलचाल से विद्वान (चिह्न)।
६–प्रकृति से कोमल, स्वभाव से मृदु (लक्षण)।
७–तुम से क्या हो सकेगा (निषेधार्थक क्या)।
८–जंगल मे रोने से क्या लाभ (")
९–मैंने अपनी इच्छा से किया (इच्छा)
१०–आप किस प्रयोजन से आए हैं (प्रयोजन)।

कुछ प्रयोगों में 'से' चिह्न लुप्त रहता है। 'आँखों देखी घटना' 'कानों सुनी बात' 'बच्चा घुटनों चलता है' 'अपने हाथों अपनी इज्जत न खोओ' 'किस के सहारे रहूँ' 'साँप पेट के बल चलता है' आदि।

चतुर्थी विभक्ति

'से' के स्थान पर 'को' या 'के लिए' 'के वास्ते' 'के निमित्त' 'के अर्थ' लगाने से चतुर्थी विभक्ति बन जाती है। चतुर्थी 'सम्प्रदान' में होती है। जिसके लिए क्रिया की जाती है, वह 'सम्प्रदान' होता है। सजीव पदार्थों के लिए 'को' चिह्न प्रयुक्त होता है और निर्जीव पदार्थों के लिए, के वास्ते, के निमित्त या के अर्थ, प्रयुक्त होता है, जैसे 'गौ को चारा डालता है' 'श्याम को फल दिए' आदि। 'पैसे के लिए, (वास्ते, निमित्त, या अर्थ) मेहनत करता है' 'यश के लिए (वास्ते, निमित्त, या अर्थ) दान करता है' आदि आदि।

विशेष-वक्तव्य—निम्नलिखित उदाहरणों मे 'को' चिह्न ही अच्छा लगता है।

१–भूखे को रोटी दो। (सम्प्रदान मे)
२–भगवान के दर्शनों को गए। (सम्प्रदान में)
३–राम को पाठ याद करना है (कर्त्ता मे)
४–मोहन को कल रोते-रोते देखा (सम्बन्ध में) मोहन को=मोहन का*
५–गुरुजी को प्रणाम (नमस्कार)
६–आपको धन्यवाद। (सम्प्रदान मे)
७–परतन्त्रता को धिक्कार। (धिक् योग मे कर्म)

* 'मोहन को कल मैंने रोते-रोते देखा' मे 'मोहन को' कर्म 'मैंने' कर्ता, 'देखा' क्रिया तथा 'रोते-रोते' क्रिया-विशेषण कर्ता से सम्बद्ध। यदि 'रोते-रोते मोहन को देखा' हो तो 'रोते-रोते' विशेषण मोहन का माना जाएगा। जिसका जो विशेषण हो वह उसी के पहले रखना चाहिए।

८–धोखेबाज को फटकार। (धिक् अर्थ में कर्म)
९–आपको ऐसा करना योग्य नहीं। (कर्ता में)
१०–छोटों को बड़ों की सेवा करनी चाहिए। (कर्ता में)
११–यह भोजन चार आदमियों को पर्याप्त (काफ़ी) होगा। (सम्प्रदान में)
पर्याप्त=अलं के योग में।

पंचमी विभक्ति

अपादान में पञ्चमी विभक्ति आती है। जिस जगह से अलग हुआ जाए, वह 'अपादान' होता है। इसका चिह्न भी 'से' है। परन्तु कारण के 'से' में क्रिया की साधनता रहती है, इसके 'से' में संज्ञा की पृथक्ता। जैसे 'लता से पुष्प गिरते हैं' 'लड़का घर से निकलता है', आदि।

विशेष-वक्तव्य—नीचे दिए उदाहरणों में किसी न किसी रूप में पृथक्ता अवश्य पाई जाती है :

१–वृक्ष से पत्ता गिरता है (अपादान)।
२–पृथ्वी से अनन्त पदार्थ पैदा होते हैं (उत्पत्ति)।
३–लाहौर से काश्मीर तक (आरम्भ)।
४–धन से विद्या श्रेष्ठ है (तुलना)।
५–लाहौर से अमृतसर २५ मील दूर है। (स्थान की दूरता)।
६–आज से बरसों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी (समय की दूरता)।
७–वह उससे भिन्न है।
८–घर से बाहर।

परे, रहित हीन, दूर, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, लज्जा, डर, बनाव आदि शब्दों तथा इनके अर्थवाले शब्दों के योग में और दिशावाचक शब्दों के योग में अपादान का 'से' आता है। जब षष्ठी का 'के' चिह्न लगता है तब अर्थ में भी भेद हो जाता है। जैसे 'लंका भारत से दक्षिण है' (भारत के बाहर है) 'कुमारी अन्तरीप भारत के दक्षिण है' (भारत के अन्तर्गत है)। 'पूछना' और 'कहना' धातुओं के गौणकर्म तथा क्रियाविशेषणों में 'से' आता है। जैसे 'तुम उनसे क्या पूछते थे? 'राम तुमसे क्या कहता था?' 'कहाँ से आए?' 'कब से खड़ा हूँ'। 'कहाँ से कहाँ चला गया' आदि। निर्धारण (निश्चय) अर्थ में सप्तमी के आगे भी 'में' आता है—'इनमें से कौन लड़का अच्छा है'। 'सिर से बोझ उतारता है'। 'मकान से गिरता है'। 'पुल से गिरता है' आदि प्रयोगों में कहीं कारण का भ्रम न हो जाए, इसलिए 'से' के पहले 'पर' और लिखना चाहिए। सिर पर से, मकान पर से, पुल पर से आदि।

षष्ठी विभक्ति

सम्बन्ध में छठी विभक्ति होती है। इसके चिह्न का-के-की, रा-रे-री हैं। स्त्रीलिंग में 'की' और 'री' आते हैं, एवं पुलिंग में 'का, के, रा, रे,। शेष सभी विभ-

विभक्तियाँ 'कारक' होती हैं। पर यह 'कारक' नहीं होती, क्योंकि इसका क्रिया से सम्बन्ध नहीं होता। इसे 'विशेषण-विभक्ति' भी कहते हैं। इसका अर्थ केवल 'सम्बन्ध' है। सम्बन्ध दोनों पदार्थों में रहता है, पर षष्ठी भेदक (विशेषण) के आगे ही आती है 'द्विष्ठो यद्यपि सम्बन्धः, षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात्', जैसे राम की पुस्तक, मेरा ग्रन्थ, मेरी बहन आदि।

विशेष वक्तव्य—आगे कोष्ठक में दिए अर्थों में षष्ठी आती है। १–प्रताप का पीछा (सम्बन्ध)। २–अब मैं नहीं आने का (भविष्यत् अर्थ)। ३–दस रुपयों का घी (मूल्य)। ४–कल की बात (समय)। ५–पाँच गज की साड़ी (परिणाम)। ६–अस्सी बरस का बूढ़ा (अवस्था)। ७–चाँदी का थाल (उपादान)। ८–तलवार का लोहा (कारण)। ९–मोहन का मामा (नाता)। १०–सबके सब (व्याप्ति)। ११–झुण्ड के झुण्ड (आधिक्य)। १२–गंगा की सौगंध (शपथ)। १३–राई का पहाड़, राजा का रंक (बदला)। १४–घड़े का पानी (आधार)। १५–पानी का घड़ा (आधेय)। १६–सच्चे का सच्चा, झूठे का झूठा, आप ही जाना जाता है (निश्चय)। १७–शरीर का हलका (चिह्न)। १८–जबान का मीठा (लक्षण)। १९–बात की बात में ठीक कर देता हूँ (शीघ्रता)। २०–पीने का पानी (योग्यता)। २१–धर्म की नौका–धर्मरूपी–(आरोप) तथा 'प्रेम का बन्धन–प्रेमरूपी'। योग्य, अधीन, तुल्य, अनुसार, प्रति, साथ, समीप, लिए, मारे, निमित्त, कारण, द्वारा, भीतर आदि शब्दों तथा इनके अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी आती है। क्रिया-विशेषणों के आगे भी षष्ठी आती है। 'बदमाश कहीं का' 'वह कहाँ का भला मानस है' 'वह कहाँ का कहाँ चला गया' 'मैं आज तक कहीं का कहीं पहुँच गया होता' 'नन्हीं तुम्हें कब की पुकार रही है', 'मैं कब का खड़ा हूँ' आदि। कभी-कभी 'में' और 'पर' के आगे भी षष्ठी आ जाती है, जैसे—'आले में का सेब' 'सिर पर का बोझ'। कभी-कभी विधेय लुप्त भी रहता है, जैसे—'मन की (इच्छा) मन माहिं रही' 'किसी की (बात) नहीं सुनता' 'कल रात की गाड़ी से चलने की (सलाह) ठहरी' आदि। सम्बन्ध के कुछ भेद—स्व-स्वामिभाव (मेरी घड़ी), सेव्य-सेवक-भाव (भगवान् का भक्त, राजा का सेवक), अंगांगिभाव (बच्चे का हाथ, पलंग का पाया), जन्य-जनकभाव (मोहन का लड़का), कर्तृकर्मभाव (बिहारी की सतसई, तुलसी का मानस), कार्यकारणभाव (सोने का कण्ठा) आदि अनेक भाँति के सम्बन्ध होते हैं। इसलिए षष्ठी का विषय बहुत ही विस्तीर्ण माना जाता है।

सप्तमी विभक्ति

सप्तमी 'अधिकरण' में होती है। आधार और अधिकरण एक ही चीज है। आधार तीन प्रकार का होता है, औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक। औपश्लेषिक आधार के आगे सप्तमी का 'पर' चिह्न ही आता है; जैसे—'चटाई पर सोता है' आदि। पर अन्यत्र सप्तमी का 'में' चिह्न लगता है; जैसे—'तिलों में तेल' 'घड़े में घी' आदि।

विशेष वक्तव्य—स्मरण रखना चाहिए कि सप्तमी का चिह्न 'पर' है, 'ऊपर' नहीं। 'ऊपर' एक स्वतन्त्र शब्द है, इनके अर्थों में महान् अन्तर है। जहाँ 'पर' आता है, वहाँ आधार और आधेय संयुक्त होते हैं, 'ऊपर' का आधार से कोई सम्बन्ध नहीं होता तथा 'ऊपर' के पहले 'के' या 'रे' चिह्न अवश्य आएगा, जैसे—'सिर पर पगड़ी' 'सिर के ऊपर छतरी' सिर और पगड़ी का परस्पर संयोग सम्बन्ध है पर 'छतरी' के साथ 'सिर' का सीधा कोई सम्बन्ध नहीं, परम्परा से भले ही हो। नीचे के उदाहरण से 'में' 'पर' और 'ऊपर' के अर्थों का भेद और भी स्पष्ट हो जाता है—'आज गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि डब्बे 'में' लोग ठसाठस भरे थे, और कुछ लोग डब्बों 'पर' ही बैठे थे, पर जहाज डब्बों के 'ऊपर' उड़ा जा रहा था'। 'औषधों के भीतर (अन्दर या बीच) बहुत-से गुण होते हैं' लिखना या बोलना महा-महा अशुद्धि है। जहाँ 'में' से काम चल सकता हो वहाँ 'के अन्दर—के भीतर—के बीच' लिखना सर्वथा अनुचित है। 'घड़े में पानी है' न कहकर 'घड़े के बीच पानी है' कहना क्या अच्छा लगेगा? इसलिए 'के बीच' आदि की बीमारी से सदा बचते ही रहना चाहिए।

कोष्ठान्तर्गत अर्थों में सप्तमी का 'में' चिह्न ही आएगा।

१—बर्तन में घी (आधार)।
२—पक्षियों में कौआ चालाक (निर्धारण)।
३—वह मुझमें और तुझमें फूट डालता है। (भेद)।
४—घर में चलो (भीतर)।
५—वह काम करो जिसमें निन्दा न हो (कारण)।
६—यह पुस्तक कितने में ली? दो रुपयों में (मूल्य)।
७—वह इन दिनों बहुत झंझट में है (अवस्था)।
८—योगी ईश्वर के ध्यान में लीन है (अवस्था)।
९—सुख-दुःख में भगवान् को न भूलो (अवस्था)।
१०—एक ही गोली में शेर का काम तमाम हो गया (कारण।

नीचे के कोष्ठान्तर्गत शब्दों के अर्थों में सप्तमी का 'पर' चिह्न आता है—

१—अटारी पर कबूतर (औपश्लेषिक-आधार)।
२—मीनार पर चढ़ो (ऊपर की ओर)।
३—नियम पर रहो (अनुसार)।
४—तीर पर तीर छोड़ने लगा (सातत्य)।
५—हमारा गाँव यहाँ से सात-आठ कोस पर है (दूरी)।
६—उसके यह कहने पर बुढ़िया बोली (अनन्तर)।

कुछ उदाहरणों में विरुद्धार्थक सप्तमी भी होती है; जैसे—'पैर में जूता'

(जूते में पैर होता है) 'हाथ मे कड़ा' (कड़े मे हाथ होता है) 'गले में माला' (माला मे गला होता है) 'कमर मे करधनी' (करधनी में कमर होती है) यहां इनका ऊपर-नीचे इर्द-गिर्द इसी प्रकार का कुछ अर्थ कर लेना चाहिए।

अशुद्ध प्रयोगो के कुछ उदाहरण

१—बहुत से शब्द ऐसे होते हैं; जो ऊपर से (स्थूल दृष्टि से या आपाततः) एक से जान पड़ते थे।

२—हाल ही मे बिहारी के ऊपर (पर या विषय मे, सम्बन्ध मे) पुस्तक निकली है।

३—आधुनिक कवियों के ऊपर कई ग्रन्थ निकल चुके हैं।

४—सूरदास जी के ऊपर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बहुत उत्तम ग्रन्थ लिखा है।

५—यद्यपि प्रधानता भावों पर (की) है।

६—वह तुरन्त स्टेशन पर (को या की ओर) भागा।

७—भारत के प्रश्न पर (मे) रूस की दिलचस्पी।

८—आंख मे (पर) लगाने का चश्मा।

९—देखो भाई देश की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर (तुम पर) है।

१०—वृक्ष मे (पर) फल लगे हैं।

मैं सम्बोधन को अव्यय मानता हूँ। इसलिए उसकी चर्चा अगले प्रकरण मे की जाएगी। पूर्व-लिखित उदाहरणो से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि प्रत्यय-विशिष्ट प्रकृति से ही हमारा भाव प्रगट होता है। न तो 'राम बाण रावण मारा' का कुछ अर्थ है, और न 'ने से को मारा' का ही। इसलिए अपने ठीक-ठीक भाव प्रगट करने के लिए, प्रत्यय-विशिष्ट प्रकृति का ही प्रयोग करना चाहिए—'राम ने रावण को बाण से मारा' आदि। यही सिद्धान्त है कि 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः।'

६

* * *

अव्यय

जिसमें कोई विकार न हो वह 'अव्यय' होता है। यद्यपि 'को' 'ने' आदि प्रत्ययों में भी कोई विकार नहीं होता, फिर भी वे अव्यय नहीं कहलाते, कारण कि उनका प्रकृति के बिना स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता। इसलिए वे प्रत्यय ही हैं, अव्यय नहीं। कभी-कभी सम्बोधन प्रकृति के पहले आता है और कभी-कभी बाद में। इसलिए इसे अव्यय ही मानना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। सम्बोधन नाम अभिमुखीकरण का है; हे, अयि, आदि इसके सूचक हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति आती है। अव्यय अनेक हैं और उनके अर्थ भी। 'अव्यय' का एक अर्थ और भी होता है—'नास्ति व्ययो यस्य' अर्थात् जिसका फजूल खर्च न हो। पर आजकल इसका बहुत ही व्यर्थ-व्यय (फजूल खर्च) हो रहा है। लिए, ऊपर, साथ, सहित, द्वारा, मार्फत आदि के सम्बन्ध में तो पहले कुछ लिख ही आए हैं। अब तो—केवल, मात्र, ही, आदि के सम्बन्ध में ही कुछ लिखना चाहते हैं।

'केवल, मात्र, भर, ही'

ये चारों अव्यय समानार्थक (एकार्थक) हैं, जैसे—

(क) आज हम केवल दूध पीकर रहेंगे।

(ख) आज हम दूध मात्र पीकर रहेंगे।

(ग) आज हम दूध भर पीकर रहेंगे।

(घ) आज हम दूध ही पीकर रहेंगे।

एक ही वाक्य में इनका एक साथ प्रयोग नहीं होना चाहिए। जैसे—

१—शब्द केवल संकेत मात्र होते हैं।

२—केवल कहने मात्र से कुछ नहीं होता।

३—ये बातें केवल दिखावा भर थीं।

४—यह केवल उत्तरी ध्रुव में ही दिखाई देता है।
५—यह सब तो केवल आप पर ही निर्भर है।
६—समस्त प्रजामात्र से सहायता ली जाएगी (समस्त या मात्र)।
७—हम=स्वयं (ही) उनसे मिलेंगे।
८—हम तो अवश्य (ही) वहाँ जाएँगे।
९—अवश्यमेव (ही) यह काम करना होगा।
१०—कोई बात (ही) नहीं।
११—वह किसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा (ही) नहीं रखता।
१२—इन दोनों में (केवल) यही अन्तर है।
१३—(केवल) वे ही लोग वहाँ जाएँगे।
१४—(केवल) इसीलिए मैं वहाँ नहीं गया।
१५—(केवल) तभी काम होगा।
१६—दोनों (ही) आदमी जाएँगे, आदि। (अच्छी हिन्दी—वर्माजी की)

'केवल' शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक 'अकेला' और दूसरा 'ही' तथा 'और' शब्द के भी दो अर्थ होते हैं—एक 'अन्य' एवं दूसरा 'योजक'। जैसे—पूर्णविराम के तुरन्त बाद योजकार्थक 'और' अव्यय नहीं आता; किन्तु अन्यार्थक 'और' शब्द आ जाता है। कोई खटक प्रतीत नहीं होती। वैसे ही 'ही' अव्यय के साथ 'अकेला' अर्थ के वाचक 'केवल' शब्द का प्रयोग नहीं खटकता। यह बात पहले के पाँचों उदाहरणों में स्पष्ट है। छठे उदाहरण में अवश्य ही आंशिक पुनरुक्ति है। परन्तु 'अवश्य' 'एवं' 'ही' आदि का भी एक साथ प्रयोग नहीं खटकता। इनका अधिक प्रयोग करने से इनमें की शक्ति कम हो गई है, जैसे—'सदा' के स्थान पर 'सदा-सर्वदा' कहे बिना जोर नहीं आता, वैसे ही 'अवश्य' के स्थान पर 'अवश्य ही' कहे बिना तृप्ति-सी नहीं होती। १४ और १५ संख्या के उदाहरणों में 'केवल' शब्द पूर्व प्रसंग का परामर्शक है, इसलिए नहीं खटकता।

कहीं-कहीं 'ही' अर्थ पर बल देने के अतिरिक्त 'हीनता' या 'उपेक्षा' का भाव भी सूचित करता है, जैसे—

(क) चार ही रुपये न!
(ख) अब वह मिल ही जाए तो क्या होगा?
(ग) हाँ, यह भी अच्छा ही है, आदि।

'भी'

किसी, कोई, कहाँ, कभी, कहीं, किन्हीं, जो, जितना, हरगिज, जब, जैसे, आदि शब्दों के साथ 'भी' का प्रयोग नहीं होना चाहिए, जैसे—

१. किसी (भी) आदमी को भेज दो।
२. वह कहीं (भी) नहीं गया था।

३. मैं हरगिज (भी) नहीं समझ सकता।

४. चाहे जैसे (भी) हो, तुम वहाँ जाओ आदि। परन्तु 'उपेक्षा' या 'आग्रह' का भाव सूचित करने के लिए 'भी' का प्रयोग अवश्य होता है, जैसे—

(क) 'चलो, जाने भी दो' (उपेक्षा)।

(ख) 'तुम कुछ देर बैठो भी तो' (आग्रह)।

'सा'

'सा' अव्यय के दो अर्थ हैं सादृश्य और परिमाण। 'सा' इन दोनों अर्थों में कुछ हीनता या निश्चय का भाव भी सूचित करता है, जैसे (क) 'एक छोटा-सा मकान बनवा लो' (हीनता)। (ख) 'इनमें से तुम कौन-सा लोगे' (निश्चायक)। इसलिए 'आप मुझे अपना छोटा-सा भाई समझें' 'अब मैं वहाँ कौन-सा मुँह लेकर आऊँ' आदि लिखना और बोलना ठीक नहीं। आशा है अब आप इनका व्यर्थ प्रयोग न करके इन्हें सच्चे अर्थ में 'यन्न व्येति तदव्ययम्' बनाएँगे।

७

• • •

विशेषण

संज्ञाओं की विशेषता या पहचान बताने वाले शब्द 'विशेषण' होते हैं। निष्प्रयोजन विशेषण पर विशेषण रखते जाना अपनी मूर्खता प्रगट करना है। विषय-लम्पट प्राणियों के लिए 'योगिराज' 'त्यागमूर्ति' 'ब्रह्मनिष्ठ' 'भक्तराज' आदि लिखकर विशेषणों का महत्त्व कम करने के साथ-साथ अपना भी महत्त्व कम करना है। किसी काले-कलूटे व्यक्ति को 'कर्पूरगौर' कहने से कैसी प्रसन्नता? कुछ सम्भव तो होना चाहिए, मनुष्य को 'सींगोंवाला' कहना क्या अच्छा लगेगा? आकाश को 'फूलोंवाला' कहने से क्या लाभ? काणे को 'एक आंख से काणा' कहने का क्या अर्थ? जब 'काणा' एक आंख वाले को ही कहते हैं, तब 'एक आंख से' (विशेषण वाक्य) ने कौन-सी विशेषता प्रगट की? एवं—ठण्डी बरफ, गरम आग, मृत आत्मा, कहने का क्या मतलब? 'बाबूजी झटपट गले में कोट डालकर चल पड़े'। क्यों जी! गले के अतिरिक्त भी कहीं कोट डाला जाता है। यदि नहीं तो 'गले में' का क्या मतलब? गले में तो अंगुलि डालने मात्र से वमन हो जाती है। धन्य हैं योगिराज बाबूजी, जिन्हें चार-पांच सेर ऊन का कोट गले में डालने पर भी कुछ नहीं हुआ। क्यों न इसके स्थान पर सीधा-सादा और निर्भ्रान्त 'कोट पहन कर चल पड़े' रख दिया जाए। एवं—'कानों में कुण्डल डाले हैं' कहना या लिखना भी ठीक नहीं, क्योंकि कुण्डल धारण ही कानों में किए जाते हैं। इस वाक्य से तो एक दूसरा ही अर्थ निकलता या निकल सकता है कि 'कुण्डल भी बादामरोगन या तेल की तरह कानों में उंडेल लिए गए हैं। इसलिए इसके स्थान पर कुण्डल धारण कर रक्खे हैं, लिखना या बोलना ही ठीक है ['गले में' 'कानों में' प्रयोग भी अब नहीं खटकते। इस 'में' चिह्न का समाधान पहले कर आए हैं।] सुनते हैं कि महर्षि वशिष्ठ ने अपने सौ पुत्रों से तो हाथ धो लिया, पर विश्वामित्र को 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा। आशा है आज से आप भी सोच-समझकर ही विशेषण रक्खेंगे। नहीं तो कोई कठोर सत्य का पक्षपाती आपको भी 'खुशामदी टट्टू' कह

डालेगा। सच भी है, विशेषण सार्थक तो होने ही चाहिए। उनकी सार्थकता तब होगी; जब हमारी दृष्टि ठीक 'सम्भव-व्यभिचाराभ्याम्' पर रहेगी।

विशेषणों के अनेक भेद, उपभेद और अवान्तर भेद होते हैं। स्थूल रूप से विशेषणों के दो भेद हैं; एक उद्देश्य-विशेषण और दूसरा विधेय-विशेषण। 'लम्बे कानों वाला' 'धोती बाँधे हुए' आदि 'विशेषण-वाक्यांश' कहे जाते हैं। उद्देश्य-विशेषण विशेष्य के पहले रखा जाता है और विधेय-विशेषण विशेष्य के बाद, जैसे—'पण्डित हिरण्यकान्त जी आए' 'गौरांग पण्डित हैं'। पर अवस्था विशेष के कारण (भय आदि में) इसका उलटा भी हो जाता है 'साँप! साँप!! काला'। जिन विशेषणों का क्रिया से सम्बन्ध होता है वे 'क्रियाविशेषण' कहे जाते हैं, जैसे—'वायु धीरे-धीरे चलती है' आदि। जिसकी विशेषता प्रगट करनी हो उसी के पहले विशेषण रखना चाहिए, जैसे—'कुछ अशुद्ध प्रयोगों के उदाहरण' और 'अशुद्ध प्रयोगों के कुछ उदाहरण' पहले वाक्य का अर्थ है कि ऐसे थोड़े-से अशुद्ध प्रयोग हैं, जिनके उदाहरण दिए जा रहे हैं। दूसरे वाक्य का अर्थ है कि अशुद्ध प्रयोग हैं तो बहुत, पर उनमें से कुछ-एक प्रयोग दर्शाए जा रहे हैं, एवं—'गाड़ी की बड़ी खिड़कियाँ' 'बड़ी गाड़ी की खिड़कियाँ, 'नई दुनिया की कहानियाँ', 'दुनिया की नई कहानियाँ', 'पुराने कपड़े के व्यापारी', 'कपड़े के पुराने व्यापारी' आदि। अर्थ के अनुसार विशेषण बहुत ही अवधानता-पूर्वक यथास्थान रखने चाहिए। व्याकरणों में अनिश्चित-संख्यावाचक विशेषण का 'सारे नगर' और अनिश्चित परिमाण-वाचक का 'सब धन' उदाहरण दिया रहता है, जो ठीक नहीं जँचता। 'सब' शब्द नित्य बहुवचन है और 'सारा' शब्द संख्यावाचक नहीं पूर्णतावाचक है। इसलिए 'सब धन' के स्थान पर 'सारा धन' और 'सारे नगर' के स्थान पर 'सब नगर' ही लिखना या बोलना चाहिए। 'मेरी पुस्तक' और 'अपनी पुस्तक' के अर्थों में भी कुछ अन्तर है। 'मेरा' शब्द के अर्थ में सम्बन्धमात्र का बोध होता है और 'अपना' शब्द के अर्थ में सम्बन्ध के साथ-साथ आत्मीयता का भाव भी लगा रहता है, जैसे—'मेरी अपनी पुस्तक' आदि।

विशेष वक्तव्य—'अपना' शब्द का सम्बन्ध सीधा कर्ता से तथा सम्बन्ध षष्ठी से ही होता है, जैसे—'मेरा नौकर अपने भाई के यहाँ गया है' यहाँ अपना शब्द का सम्बन्ध 'गया है' क्रिया के कर्त्ता 'नौकर' से ही है, कहने वाले से नहीं। 'मैंने नौकर को अपने भाई के यहाँ भेजा है', में 'अपना' शब्द का सम्बन्ध 'भेजने वाले' 'मैंने' कर्त्ता से ही है, जाने वाले नौकर से नहीं। 'वह डाकिया जो अपनी नित्य यहाँ आकर चिट्ठियाँ दे जाया करता था' में कर्त्ता 'डाकिया' है। उसी का सम्बन्ध 'अपनी' शब्द से होगा, इसलिए 'अपनी' के स्थान पर 'हमारी' होना चाहिए। यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से 'मेरे विचार मैं पहले ही प्रगट कर चुका हूँ' या 'मेरी माता की मृत्यु हो जाने पर मैं मेरे पिता के पास सोता था' अशुद्ध नहीं। फिर भी जो 'तादात्मता' यहाँ [illegible] (इष्ट) है, वह 'मेरा, मेरी, मेरे' से व्यक्त नहीं होती। इसलिए लिखना चाहिए कि विचार मैं पहले ही प्रगट कर चुका हूँ' 'अपनी माता की मृत्यु हो [illegible]ने पर

पिता के पास सोता था' आदि ('मेरे' 'मेरी' आदि की पुनरुक्ति भी नहीं रही।) 'मेरी आँखों पर अपना विश्वास नहीं' का अर्थ होगा अपना = विश्वास का। क्योंकि 'कर्ता' विश्वास है, 'अपना' शब्द से सदा 'कर्ता' का तथा 'अपना' शब्द के पूर्व आगत सम्बन्धी का ही ग्रहण होता है, जैसे—'तुम अपने हाथों अपने पाँवों कुल्हाड़ा क्यों मारते हो'। किन्तु 'मेरी आँखों पर मेरा विश्वास नहीं' लिखना भी निष्प्राण वाक्य है। होना चाहिए 'अपनी आँखों पर मेरा विश्वास नहीं'। अपनों पर भी निज का विश्वास न होना ही तो आश्चर्य की बात है या 'मेरी आँखों पर मेरा अपना विश्वास नहीं' आदि।

अनुपयुक्त विशेषणों के कुछ उदाहरण

१—वह सुन्दर शोभा (शोभा सुन्दर ही नहीं, बहुत सुन्दर होती है) धारण कर रहा था।

२—दो दिन के बादलों के पीछे (बाद) आज सूरज निकला है।

३—आटे का भाव गम्भीर (विकट) रूप धारण कर रहा है।

४—राजा पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था (राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था)।

५—यह पुस्तक बड़ी (बहुत) अच्छी है)।

६—मुझे उस समय भारी (बहुत या अत्यन्त) भूख लगी।

७—उनका धैर्य समाप्त (नष्ट) हो गया।

८—मेरे भाई ने यह पुस्तक आपको समर्पण (समर्पित) की है।

९—इस विषय में निश्चय रूप से (निश्चित रूप से) कुछ कहा नहीं जा सकता।

१०—तुम सबसे सुन्दरतम हो (तम या सबसे)

११—इस विषय की सम्भावना प्रकट (प्रकट व्यर्थ है) हो रही है।

१२—उन्होंने एक निरीह बालिका का चित्रण उपस्थित (उपस्थित व्यर्थ) किया।

१३—आकाश से भीषण (बूँदें भीषण नहीं होतीं) बूँदें पड़ रही हैं।

१४—साहित्य और जीवन का घोर (अत्यन्त या घनिष्ट) सम्बन्ध है।

१५—उनके घोर (बहुत) आग्रह करने पर यह पत्र लिखा गया था।

१६—उनकी मृत्यु से नगर में भीषण (अत्यन्त या महान्) शोक छा गया।

१७—उन्होंने अपनी भयानक (महान् या अदम्य) शक्ति का परिचय दिया।

१८—रचना में अश्लीलता अत्यन्त भयंकर (अक्षम्य) दोष है।

१९—नवीन लेखक जान-बूझकर बीहड़ (जटिल या कठिन) शब्द देते हैं।

२०—उनकी रचना वैसी ही विकृत हो जाती है जैसी भयंकर (भद्दो और

भोंड़ी) नाक से शूर्पणखा की आकृति ।

२१—उसकी प्रतिकूल (कटु आलोचना) समालोचना भी सब करते हैं।

२२—इनका कोई (कुछ) अर्थ नही ।

२३—आपकी अधिकांश बातें (अधिकतर) ठीक हैं।

२४—अधिकांश (अधिकतर) लोगों का यही विचार है ।

२५—महीनों से रुग्ण-शय्या (रोग-शय्या) पर पड़े हुए हैं ।

२६—दिल्ली में लगभग (प्रायः) शान्ति ।

२७—वह पुस्तकें विशेष पढ़ता था । (वह विशेषतः पुस्तकें पढ़ता था) ।

२८—उसका भारी (बहुत) अनुरोध है ।

२९—छात्र दृढ़ (दृढ़ता से) संघटित हों ।

३०—जैसे (जिस प्रकार) मन में कुछ निकटता जरूरी है उसी प्रकार दूरी भी ।

३१—जितना (जो) अंश देख गया हूँ, वह मुझे बहुत उपयोगी जँचा है ।

३२—जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति नही होती, मुझे राज्य-तिलक से कोई सम्बन्ध नहीं (जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक मेरा राज्य-तिलक से कुछ सम्बन्ध नही) ।

३३—सारथी—उधर मत देखो स्वामी ! अस्तगामी सूर्य का दृश्य बहुत भयंकर होता है (अस्त होते हुए सूर्य का दृश्य या देखना अशुभ होता है) आदि ।

कई पुस्तकों में 'गुप्त रहस्य' 'पुरानी परम्परा' 'ऐसी सम्भावना' 'दयनीय दुर्दशा' 'उचित न्याय' आदि में भी विशेषणों को अनुपयुक्त माना है। परन्तु 'रहस्य' का एक अर्थ 'भेद' भी होता है । भेद गुप्त और प्रगट दोनों प्रकार हो सकता है। 'परम्परा' भी 'पुरानी और नई' हो सकती है। पूर्व परामर्शक 'ऐसी' शब्द का 'सम्भावना' के साथ प्रयोग हो सकता है। 'दुर्दशा' भी दो प्रकार की होती है—एक 'दयनीय' तथा दूसरी 'अदयनीय' । अच्छे लोगो की दुर्दशा दयनीय होती है तथा बुरे लोगों की दुर्दशा पर दया नही आती । लोक में कहावत है कि, चोर को खाते हुए न देखे, उसे पिटते हुए देखे ।

हमें आँखें मूँद कर भेड़िया-धसान नही करनी चाहिए । अपनी ईश्वरदत्त बुद्धि से भी कुछ काम लेना चाहिए । नीचे लिखे अशुद्ध-रूपों से बचते रहिए ।

सतोगुण (सत्वगुण), सृजन (सर्जन), जागृत, जाग्रत् (जागरित), सौजन्यता (सुजनता या सौजन्य), रुदन (रोदन) धैर्यतापूर्वक (धीरतापूर्वक), छठवां ' उज्वल (उज्ज्वल) क्रोधित (क्रुद्ध) निरपराधी (निरपराध), व्यापित (. .

(ग्रस्त), सशंकित (सशंक या शंकित), वैद्युतिक (वैद्युत) निराकांक्षी (निराकांक्ष), आवश्यकीय (आवश्यक), संपर्कित (संपृक्त), त्रसित (त्रस्त), गौरवित (गौरवान्वित), अनुमानित (अनुमित), निर्मोही (निर्मोह), निर्दयी (निर्दय) आदि। अन्तिम तीन शब्दों का तो चलन भी हो गया है। 'निर्मोही' 'निर्दयी' अतिशय अर्थ में बनते भी हैं। ('सृजन' 'जागृत' 'रुदन' 'क्रोधित' 'ग्रसित' 'त्रसित' 'अनुमानित' आदि रूपों का भी प्रचलन हो गया जिन्हें हिन्दी ने अपना लिए हैं।)

इसलिए हमारा प्रत्येक विशेषण किसी न किसी विशेष अभिप्राय से ही यथा-स्थान प्रयुक्त होना चाहिए। अभिप्राय तभी निकलेगा जब हमारी दृष्टि 'सम्भव-व्यभिचाराभ्यां स्याद् विशेषणमर्थवत्' पर रहेगी। जहां संभव हो—घटता हो—संगत हो तथा व्यभिचार आता हो—किसी दूसरे का ग्रहण होता हो—वहीं विशेषण लगाना चाहिए। वही सार्थक विशेषण होगा।

मेंढ़क टर्राते हैं, भ्रमर गुंजारते हैं, बादल गर्जते हैं, बिजली कड़कती, चमकती, और कौंधती है, आदि।

जब हम मनुष्येतर इन जड़-चेतन पदार्थों में भी मनुष्यत्व का आरोप कर लेते हैं तो ये भी बोलने लग पड़ते हैं—

'वीणा मधुर-मधुर कुछ बोल', 'पापी पपीहा रे···पी-ही न बोल बैरी, पी-पी न बोल' आदि।

(हमारे यहाँ जब भैंस, गौ, घोड़े, कुत्ते आदि को पानी पिलाते हैं तो क्रमशः हेयो-हेयो, छिहो-छिहो, त्वा त्वा, लक-लक कहते हैं। ये शब्द इनके पीने की ध्वनि के ही अनुकरण हैं।)

'खाना' का अर्थ है खाजा—भक्षण। हम अन्न खाते हैं, पशु घास खाते हैं, और सिंह मांस खाते हैं, सभी कुछ न कुछ खाते ही हैं, खाने के बिना तो जीना ही असम्भव है। यदि वह खाई जानेवाली चीज कुछ कड़क या सूखी हो, अथवा उसके खाने में कड़कड़ आवाज होती हो तो हम 'खाना' न बोलकर 'चबाना' ही बोलते हैं। 'चबाना' क्रिया में एक और बात होती है कि वह चबाई जानेवाली वस्तु हाथ से ही मुख में डाली जाती है, मुख से नहीं उठाई जाती। चबाने की क्रिया मनुष्य ही कर सकते हैं, दूसरे नहीं। 'हम चने चबाते हैं, 'घोड़ा चने खाता है, 'हम पान चबाते हैं' पर 'गधा पान (लतापत्र) खाता' ही है। मनुष्य के लिए 'पान खाता है' कहना ग्राम्यता है 'करोति खादनं पानम्' (काव्यदीपिका)। कई एक आचार्य तो रेवड़ियाँ भी खाते हैं और चने भी खाते हैं। यदि चने भीगे हुए हों तो खाए भी जा सकते हैं। 'चने खाता है' का तो अर्थ है कि वह चनों के अतिरिक्त कोई दूसरा अन्न ही ग्रहण नहीं करता। 'चूहा चने कुड़कता है', यदि कुड़कने वाली चीज भक्ष्य नहीं तो 'चूहा किताब कुतरता है'। कुछ लोग कसम भी खाते हैं। पर हमें तो शपथ करना ही शोभा देता है। कुछ लोग कभी-कभी हमारे कान भी खा ही जाते हैं। यह हुआ मुहावरा=मुखावरा (मुखम् अविमते येन) जो मुख में फिट बैठ जाए वह। कुछ लोग नित्य जूतियाँ भी खाते हैं। यद्यपि जूतियाँ खाने की चीज नहीं; पर वे जूतियों को ही जलेबियाँ समझते हैं। कुछ लोग भय के मारे कभी-कभी सौंह भी नहीं खाते (एक बनिए के सामने दो जाट लड़ पड़े। थानेदार ने उन्हें पकड़ लिया। दोनों अपने आपको निरपराध सिद्ध कर रहे थे। एक ने कहा कि इस बनिए से पूछ लीजिए—कौन अपराधी है? जब बनिए से पूछा गया तो वह बोला—मैंने कुछ नहीं देखा थानेदार ने कहा—अच्छा, 'सौंह खाओ?'। बनिए ने उत्तर दिया—आज मंगलवार का व्रत है, कुछ नहीं खाता।) वानर चने चबाता भी है और खाता भी है कारण कि वह 'वानर' है— विकल्प से नर है। हम दही खाते भी हैं और उसमें कुछ पानी मिलाकर पीते भी हैं। हम चाय-दूध पीते भी हैं, गरम हो तो सुड़कते भी हैं, घूंट-घूंट कर पीते हैं बीड़ी-हुक्का आदि भी पीते ही हैं (यहाँ बीड़ी-हुक्के आदि के धुएँ से मतलब है) पीने का अर्थ है—कोई चीज साँस से खींचकर गले के तले उतारना, चाहे वह तरल पदार्थ हो, चाहे धुआँ। 'सर्पाः पिबन्ति पवनं नच दुर्बलास्ते'

—साँप वायु पीते हैं। वायुरूप होने के कारण कुछ लोग हमारे प्राण भी पी जाते हैं।

'चलना' नाम गति का है। आधार पर से हम 'उठते हैं'। सटी हुई चीज से एक ओर 'हटते हैं'। यदि इसमें शीघ्रता हो तो 'दौड़ते हैं'। यदि यह क्रिया भय के कारण हुई हो तो 'भागते हैं'। यदि यही क्रिया आकाश में हो रही हो तो 'उड़ते हैं'। यदि वेगपूर्वक अपने को आगे की ओर फेंकें तो 'कूदना' कहा जाएगा। यदि ऊपर की ओर कूदें तो 'उछलना'। यदि यही क्रिया हम किसी दूसरे से(उस पर बैठकर या पीछे-पीछे चलकर) कराएँ तो 'चलाना' होगा। रथ, गाड़ी, मोटर, साइकिल आदि में या पर बैठकर उन्हें चलाते हैं पर 'हल' पीछे-पीछे चलकर ही चलाते हैं। यदि हम पीछे न होकर किसी को अपनी ओर चलाएँ तो 'खींचना' होगा। बैल हल खींचते हैं, इञ्जन गाड़ी खींचता है। कभी कभी हम भी कोई चीज खींच ही लेते हैं, खाट-कुरसी आदि। वैद्य लोग 'अर्क' भी खींचते हैं। यदि हम अपनी ओर न खींचकर इसके बिलकुल विपरीत क्रिया करें तो 'ढकेलना' होगा। मोटर बिगड़ जाने पर थोड़ी दूर हम उसे ढकेलकर ले जाते हैं। कुली लोग लाइन पर गाड़ी के डब्बे प्रायः ढकेलते ही रहते हैं। उसी प्रकार 'होना' और 'रहना' में भी अन्तर है। 'होना' केवल सत्ता सूचित करता है, 'रहना' सत्ता के साथ-साथ भिन्नता भी द्योतित करता है।

क्रियाओं से शब्द बनते है। जब क्रियाओं का ही अर्थ ठीक-ठीक ज्ञात नहीं, तब उनसे बननेवाले शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक कैसे ज्ञात हो सकता है। इसलिए आपको पुस्तक-माला स्थापन करनेवाले, गौरव उन्नत करनेवाले, चन्दा संकलित करनेवाले तो बहुत मिलेंगे, परन्तु प्रकाशित, अर्जित और जमा करनेवाले कम।

आँख, घड़ा, गिलास आदि फूटते हैं, हाथ टूटता है, कागज फटता है, कपड़ा फटता भी है और कटता भी। हाथ से फाड़ते हैं और कैंची से काटते हैं। इसी प्रकार घुमाना और मोड़ना में, चखना और खाना में, गिरना और पड़ना मे, छोड़ना और त्यागना में, तानना और खींचना में, टोकना और चिढ़ाना मे, कहना और बतलाना में, घोटना और घोटना में, लेटना और लोटना में, खोसना और खोंसना में, फूकना और फूंकना में, खपना और समाना में, खोदना और उखाड़ना में, ठोकना और जड़ना में, बढ़ाना और लम्बा करना मे, भूलना और भुलाना मे, गँवाना और निछावर करना आदि में भी अन्तर है।

हिंदी के एक प्रसिद्ध भाषा शास्त्री का मत है कि—(क) परीक्षा में उत्तीर्ण ही हुआ जाता है, परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की जाती। (ख) ग्रन्थ की रचना ही होती है, निर्माण नहीं। (ग) धनुष ताना ही जाता है, खींचा नहीं।

पर (क) 'सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तके केशवे' में तो पाण्डवों ने नदी ही उत्तीर्ण की है। यदि विद्यार्थी लोग भी परीक्षा-रूपी नदी उत्तीर्ण कर लें तो क्या आपत्ति ?

(ख) तार्किक चक्र—चूड़ामणि श्रीविश्वनाथजी तो 'निज-निर्मित-कारि

साइकिलें भी झगड़ेंगी और इनकी देखा-देखी मोटरें भी कभी न कभी जरूर हाथा-पाई कर बैठेंगी।

'पुलिस तथा गाँववालों में काफी देर तक गोलियों का आदान-प्रदान होता रहा' (हिन्दुस्तान)। ठीक है, स्कूल की याद आ गई होगी, क्योंकि छुट्टी के समय छोटे-छोटे बच्चे सोडे की हरी, पीली और लाल गोलियाँ दूकानदार से बार-बार बदलाते रहते हैं। एक समाचार का शीर्षक था 'पुलिस तथा गाँव वालों की भिड़न्त'। ओहो! बेचारों के सींग टूट गए होंगे। भिड़ने की क्रिया सिर से ही होती है। गाड़ी के इन्जन भी भिड़ते नहीं टकराते हैं। कभी-कभी मनुष्यों में भी मुठभेड़ हो ही जाती है, 'भेड़' नहीं। जहाँ केवल 'भिड़' धातु का प्रयोग है, वहाँ लेखक या वक्ता का भाव उनका अनौचित्य प्रगट करना होता है। जैसे दिल्ली ने कहा—'यह बात करनी होगी' तो लखनऊ ने कहा—'यह बात करना होगा' भाव यह है कि दोनों भिड़ गए'''' प्रकृत उदाहरण में ऐसा कोई भाव नहीं। केवल शीर्षक जोरदार बनाने के लिए ऐसा लिखा गया है। जीवन में हम एक ही काम सब कामों से अधिक करते हैं। क्या? किवाड़ों का भेड़ना। वे भी दिन में बीसों बार भिड़ते हैं और बीसों बार खुलते हैं। 'अच्छी हिन्दी' में तो किवाड़ भी बन्द ही होते हैं।

"जिन्होंने स्वातन्त्र्य-युद्ध में अपने प्राण गँवाए हैं, श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं।

(क़·

र

ग

ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करना चाहिए।

क्रियाओं का ज्ञान ही सबसे सूक्ष्म विषय है। इनका ज्ञान हो जाने पर इनसे बननेवाले शब्दों का ज्ञान स्वयं हो जाता है। हम तो बैठते ही हैं, पर कभी हमारा दिल भी बैठता है। हम तो रोते ही हैं और कभी-कभी हमारा दिल भी रोता है। बस, दिल बैठना, दिल रोना, मुहावरा—(वाग्धारा या मुखावरा) बन गया। जब ऐसे-ऐसे शब्द हमारे मुख पर चढ़ जाते हैं तो हम उन्हें मुहावरा (मुखावरा) कहने लग जाते हैं। 'मुँह पर चढ़ना' भी तो एक मुहावरा ही है। 'लोकोक्तियाँ और मुहावरे' आपने देख ही लिए होंगे। पर आप कितनी भी पुस्तकें पढ़ डालें, जब तक आपको क्रिया का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं तब तक आपको 'ज्ञानं भारः क्रियां विना' ही है।

९

* * *

वाक्य

यहाँ तक हम शब्द, अर्थ, लिंग, विभक्ति, विशेषण, क्रिया आदि तो सीख आए हैं। पर अभी तक ये सब पद ही पद है : इनसे हमारा कोई विशेष अभिप्राय या विचार प्रगट नहीं होता। अपने भाव ठीक-ठीक प्रगट करने के लिए हम इनमें एक मेल बैठाते है। यही मेल 'अन्वय' या 'अन्विति' कहलाता है। अन्वय या अन्विति का अर्थ ही अनु=विचारो के अनुसार, अय=पदो का बैठना है। पदों का सम्बन्ध के अनुसार अन्वय कर देने पर भी हमारी आकाक्षा शान्त नहीं होती। 'राम का घोड़ा' कहने पर भी वह आकांक्षा बनी ही रहती है कि 'वह है, या गया' 'दौड़ता है या लोटता है' 'सुन्दर या असुन्दर' आदि। जब हम इनमें से कोई एक क्रिया का प्रयोग कर देते हैं, तब हमारी आकाक्षा शान्त हो जाती है। अर्थात्—हमारा कोई-एक भाव या विचार ठीक-ठीक प्रगट हो जाता है। अब इसे 'वाक्य' कहेंगे। वाक्य विचारो के प्रतिनिधि होते है। वाक्य ही भाषा का मुख्य अंग है।

'राम खाता है' 'राम पढाता है' कहने पर भी हमारी यह जानने की आकाक्षा रहती है कि राम क्या खाता है ? और किसको पढाता है ? जो इस क्या और किसको का उत्तर हो, वह कर्म होता है। जैसे 'राम रोटी खाता है' 'राम देव को पढाता है', 'रोटी' और 'देव' कर्म हैं। जिस क्रिया के सम्बन्ध में 'क्या' ओर 'किसको' प्रश्न न हो सके वह 'अकर्मक' होती है, जैसे—राम सोता है, आदि। कभी-कभी कर्ता, कर्म और क्रिया के होने पर भी आकांक्षा बनी रहती है, जैसे—'मैंने राम को समझा'। क्या ? 'पण्डित'। 'राम है' क्या ? 'विद्वान'। सकर्मक क्रियाओ के योगी ऐसे शब्द 'कर्मपूरक' और अकर्मक क्रियाओं के योगी ऐसे शब्द 'कर्तृपूरक' कहलाते हैं। ऐसा व्याकरणो में लिखा रहता है। वास्तव में ये भी विधेय-विशेषण ही हैं।

जो क्रिया करे वह 'कर्ता', जिस पर क्रिया का फल पड़े वह 'कर्म', जो क्रिया में सहायता करे वह 'करण', जिसके लिए क्रिया की जाए वह 'सम्प्रदान', जहाँ से

पृथक् हुआ जाए वह 'अपादान', जिसके साथ कोई नाता हो 'सम्बन्ध' और आधार तो 'अधिकरण' है ही।

कर्ता में (० या ने), कर्म में (० या को); करण मे (से), संप्रदान में (को, के लिए, आदि), अपादान में (से), संबंध में (का, के, की, रा, रे, री) और अधिकरण में (में और पर) विभक्ति चिह्न लगते हैं।

जिसमे एक क्रिया हो वह 'वाक्य' होता है। 'है राम पढ़ता पुस्तक' में एक क्रिया तो है। पर यह 'वाक्य' नहीं। कारण कि इसमें अन्विति नहीं। यह नियम है कि साधारण अवस्था में पहले कर्ता फिर कर्म और अन्त मे क्रिया आती है, जैसे—'राम पुस्तक पढ़ता है' आदि। 'राम आग से सींचता है' में एक क्रिया तथा अन्विति तो है, पर यह 'वाक्य' नही, कारण कि आग मे सीचने की योग्यता ही नही।

'राम, घोड़ा, लड्डू, पूड़े और गांधी है' मे एक क्रिया तथा अन्विति तो है, पर यह वाक्य नही, क्योंकि इसमें हमारी सुनने की आकांक्षा ही नहीं। यह तो केवल पागलों का-सा प्रलाप है।

'राम पुस्तक' एक दो-घंटे के बाद बोल दिया 'पढ़ता है' तो भी यह वाक्य नहीं होगा, क्योंकि इसमे आसत्ति (निकटता) नही। सारांश यह निकला कि जिसमें योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति वाले कर्ता, कर्म, करण आदि हों वह वाक्य होता है।

वाक्य तीन प्रकार के होते हैं १—साधारण वाक्य, २—मिश्र वाक्य और ३—संयुक्त वाक्य। साधारण वाक्य में केवल एक उद्देश्य और एक विधेय होता है, जैसे—'घोड़ा दौड़ता है' घोड़ा 'उद्देश्य' है और दौड़ता 'विधेय' है। मिश्रवाक्य में एक प्रधान बात होती है और दूसरी गौण। 'गोपाल कहता है कि भानु आज स्कूल नहीं गया'। यहाँ 'गोपाल कहता है' प्रधान बात है और 'भानु आज स्कूल नहीं गया' गौण। संयुक्त वाक्य मे प्रधान बातें भी कई हो सकती है, जैसे—मै तो सो गया और वह बैठा-बैठा अपना पाठ याद करता रहा आदि। आपने इनके अवान्तर भेद व्याकरण में देख ही लिए होंगे।

गड़बड़ तो तब होती है जब एक ही वाक्य मे कर्ता, कर्म, करण आदि आ जाते है। साधारणतः यह नियम है कि पहले कर्ता फिर अधिकरण, अनन्तर अपादान, संप्रदान, करण और कर्म आते है, जैसे—'सीता वन में कुटिया से रावण के लिए हाथों से कन्द-मूल-फल लाई'। यदि अनेक अधिकरण आ जाएँ तो कालवाची अधिकरण पहले रखना चाहिए, जैसे—'*वसन्त में वन-उपवन में फूलों की बहार है*', 'ये डाकू दिन में जंगलो में छिपे रहते हैं' आदि।

प्रश्नवाचक 'क्या' और 'कौन' जिसके विषय में पूछा जा रहा हो उसी के पहले आते हैं; जैसे—'क्या मोहन गाता है?' 'मोहन क्या गाता है?' 'वह कौन आदमी है?' 'वह आदमी कौन है?' 'क्या' और 'कौन' का स्थानान्तरण कर देने से अर्थ में भी भेद हो गया है। जो-जो जिस-जिस कर्ता, कर्म, करण आदि से सम्बन्ध रखता हो वह उसी के पहले रखा जाता है, नही तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है, जै

'उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न इलासुत पुरूरवा के पुत्र और शत्रुओं की आयु का संहार करने वाले आयु का यह बाण है' बताइए—'उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न पुरूरवा है ?

यह बात बोलचाल की साधारण अवस्था के संबंध में कही गई है। पर जब किसी बात पर जोर देना होता है या उसकी प्रधानता दिखानी होती है तब वही आगे-पीछे रखी जाती है। ऐसा करने से वाक्य का सारा क्रम (ढांचा) ही बदल जाता है, जैसे—

कर्ता के पहले क्रिया—'जाना था' मुझे और गया वह। कर्ता के पहले पूर्व-कालिक क्रिया—विद्वानों की संगति में 'रहकर' मूर्ख भी विद्वान हो जाते हैं। ऐसे स्थलों पर पूर्व-कालिक क्रिया कारण के अर्थ में आती है। (रहकर=रहने के कारण)।

कर्म के पहले क्रिया—मैंने 'बुलाया' एक को और 'आ गए दस'।

कर्ता के पहले कर्म—'मोहन को' मैं नहीं पहचानता।

कर्ता के पहले करण—'छुरी से' उसने टहनी काटी।

कर्ता के पहले संप्रदान—'आप के लिए' मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

कर्म के पहले सम्प्रदान—तुम 'बच्चों को' यह फल देना।

कर्ता के पहले अपादान—'घर से' ललुआ भागा तो सही, पर उसकी माता ने उसे पकड़ लिया।

संबंध के पहले संबंधी—ये 'पुस्तकें' मेरी हैं। अपराध 'किसी का' और कोई दण्ड भोगे।

कर्ता के पहले अधिकरण—'मुंडेर' पर कबूतर हैं। 'तुझ में' शक्ति कहाँ! कर्म के पहले क्रियाविशेषण—वह 'भलीभाँति' रामायण पढ़ सकती है। विशेष्य के पहले विधेय—'चालाक' तो वह है ही। इसी प्रकार प्रयोगानुसार अन्य परिवर्तन भी समझ लेना चाहिए।

वाक्यों में होनेवाली व्याकरण-सम्बन्धी विशेष-विशेष भूलें और उनका सुधार—

१. हम लिख जाते हैं कि 'उन्होंने बैल, घोड़े और हाथियों के व्यापार से बहुत धन कमाया'। यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि 'और' अव्यय, वाक्यों तथा शब्दों का समुच्चय करता है। जहाँ शब्दों का समुच्चय करता है वहाँ 'व्यस्त द्वन्द्व' होता है। जहाँ 'और' का लोप हो जाता है वहाँ 'समस्त द्वन्द्व' होता है। द्वन्द्व के अन्त में जो शब्द होता है उसका प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है। ऊपर के उदाहरण में 'व्यस्त द्वन्द्व' है और उसके अन्त में 'के' शब्द है, 'हाथियों' के साथ तो वह ठीक बैठ जाता है पर 'बैल' और 'घोड़े' के साथ ठीक नहीं बैठता क्योंकि 'बैल' और 'घोड़ा' शब्द का बहुवचन 'बैलों' और 'घोड़ों' होता है इसलिए लिखना भी 'बैलों, घोड़ों और हाथियों के व्यापार से' चाहिए। यदि वस्तुतः एक बैल, एक घोड़ा और बहुत हाथी हैं

तो 'बैल' 'घोड़े' लिखना ही ठीक होगा। यह तो हुई व्यस्त द्वन्द्व की बात। अब लीजिए समस्त द्वन्द्व की। समस्त द्वन्द्व में 'और' कभी नहीं आता, जैसे—'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य शूद्र सब भगवान् के प्यारे पुत्र हैं'। पर कभी-कभी हम संक्षेप करने के लिए द्वन्द्व के अंत में 'आदि' भी रख देते हैं। इसी के आगे विभक्ति चिह्न आते हैं और यह ज्यों का त्यों अविकृत रहता है—'व्याकरण आदि की टीका' ('व्याकरण आदियों की टीका' नहीं)। 'उर्वशी और चित्रलेखा आदि आकाश मार्ग से इन्द्रपुरी को चली गईं' 'यह पुकार मेनका, रम्भा और सहजन्या आदि अप्सराओं की थी' आदि वाक्यों में 'और' अशुद्ध है, लुप्त होना चाहिए।

२. व्यस्त द्वन्द्व की अन्तिम क्रिया एकवचन मे रखनी चाहिए या बहुवचन में ? स्त्रीलिंग या पुंलिंग मे ?

इस विषय में रामचन्द्रजी वर्मा का मत है कि 'वस्तुत. अन्तिम क्रिया का वचन वही होना चाहिए; जो उससे ठीक पहले आई हुई संज्ञा का हो' (लक्षण में यदि 'उससे' के स्थान पर 'उसके' होता तो और स्पष्टता आ जाती) लक्षण बिलकुल ठीक है पर उदाहरणों के विषय में कुछ आवश्यक निवेदन करना है। उदाहरण—(१) उसके पास दो गौएँ और एक घोड़ा है। (२) महाराज के साथ दो दासियाँ और पद्मावती भी थी। (३) राम और सीता आईं। भाषा की प्रकृति के अनुसार हम कह सकते हैं कि द्वन्द्व में (चाहे वह व्यस्त हो चाहे समस्त) छोटे शब्द ही पहले आते हैं। यद्यपि हम सब जानते हैं कि पहले फूल आता है और बाद मे फल। फिर भी सब यही कहते हैं कि 'तुम फलते-फूलते रहो' या 'तुम खूब फलो और फूलो' क्योंकि 'फूल' से 'फल' की एक मात्रा कम है, हलका है। दस तक तो छोटी संख्या होने के कारण उच्चरित क्रम ही लिया जाता है, जैसे—एक-दो, आठ-नौ, पाँच-छह। पर दस संख्या के बाद लाघव पर ही ध्यान दिया जाता है। दस-बीस, बीस-तीस आदि की तरह हम 'पचास सौ' नहीं कहते 'सौ-पचास' कहते हैं, क्योंकि 'सौ' बड़ी संख्या होते हुए भी लघु है—वजन मे कम है। इसलिए—'गौएँ' और 'घोड़े' की मात्राएं बराबर होने पर भी एक होने के कारण 'घोड़ा' ही पहले आएगा (१) उसके पास एक घोड़ा और दो गौएँ थीं। दूसरे उदाहरण में तो 'पद्मावती' को बाद मे रखकर दासियों से भी निकृष्टतर बना दिया गया है। वह तो रानी है और एक है, पहले ही बैठेगी। (2) महाराज के साथ पद्मावती और दो दासिया भी थीं। 'राम और सीता आईं' लिखकर तो 'पितुर्दशगुणं माता गौरवेणाऽतिरिच्यते' को बिलकुल आंखों से ओझल कर दिया है। 'सीता और राम आए' ही ठीक है। ऐसे अवसरो पर पहले उसी चीज का नाम होना चाहिए, जो एक हो; और तब उन चीजों का जिक्र होना चाहिए जो एक से अधिक हों। इसलिए—'तीन झोपड़ियाँ और एक खेमा जल गये' या 'तीन खेमे और एक झोपड़ी जल गई' न कहकर 'एक खेमा और तीन झोपड़ियाँ जल गईं' या 'एक झोपड़ी और तीन खेमे जल गये' ही कहना चाहिए।

३. हिन्दी मे एक और प्रकार की भूल हो जाती है, जो संस्कृत मे नहीं होती।

सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कृदन्ती कर्ता के आगे 'ने' चिह्न आता है और अकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता के आगे यह चिह्न नहीं आता। जब हम किसी एक ही वाक्य में सकर्मक और अकर्मक का गठजोड़ कर देते हैं ; तब यह भूल हो जाती है, जैसे—'जलूस कचहरी गया और वहाँ प्रदर्शन किया' 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और कहा'। इन दोनों उदाहरणों में 'और' के बाद 'उसने' सर्वनाम अवश्य आना चाहिए। कारण कि 'करना' और 'कहना' क्रियाएँ सकर्मक हैं अथवा—'वह वहाँ जाकर बैठ गया और बोला' होना चाहिए।

४. व्याकरण का यह नियम है कि पूर्वकालिक क्रिया का कर्ता और गणी क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न-भिन्न नहीं। जैसे 'राम रोटी खाकर पाठशाला गया'। इसमें 'खा' और 'जा' धातुओं का कर्ता राम ही है, कोई दूसरा नहीं, इसलिए यह वाक्य शुद्ध है (जब क्रिया पर जोर देना होता है तब 'कर' के स्थान पर 'करके' लगाते हैं)। पर—

(क) 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़के की मृत्यु हो गई' में दबता 'लड़का' है और होती है मृत्यु। इसलिए 'दबकर' के स्थान पर 'दबने से' होना चाहिए।

(ख) 'स्वतन्त्रता लड़कर मिलेगी' में 'लड़ता' कोई है और मिलती 'स्वतन्त्रता' है। इसलिये 'लड़कर' के स्थान पर 'लड़ने से' होना चाहिए।

(ग) 'आँसूगैस छोड़कर उपद्रवी पकड़े गये' में 'छोड़े' कोई और जाते हैं 'पकड़े' कोई और। इसलिये 'छोड़कर' के स्थान पर 'की सहायता से' होना चाहिये। अथवा—

(क) 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़का मर गया' एवं 'हम स्वतन्त्रता लड़कर ही लेंगे' होना चाहिए। संस्कृतवाले भी 'विष्णुचरणोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते' रटते रहते हैं, जो अशुद्ध है क्योकि इसमे कर्ता 'जन्म' है, वह चरणोदक नहीं पीता।

५. एक ही प्रसंग में तू, तुम, मैं, हम, आप, आदि में से जिस शब्द का पहले प्रयोग किया हो, बाद में भी उसी का प्रयोग करना चाहिए, इसके विपरीत लिखना अशुद्ध है। जैसे,—'गुरुजी ने कहा कि यदि तूने फिर शरारत की तो मैं तुम्हें दण्ड दूँगा और तुम्हारे पिता को लिख दूँगा कि मोहन हमारी आज्ञा नहीं मानता'। होना चाहिये 'गुरुजी ने कहा कि यदि तूने फिर शरारत की तो मैं तुझे दण्ड दूँगा और तेरे पिता को लिख दूँगा कि मोहन मेरी आज्ञा नहीं मानता।

६. 'दो दिन के बाद' 'दो दिनों के बाद' आदि प्रयोग शुद्ध ही हैं। एक पक्ष में समास कर दिया है, दूसरे पक्ष में नहीं किया। समास में 'दो-दिन के बाद' इस प्रकार मिलाकर लिखना चाहिए। 'बहुत स्थानों पर' ऐसा देखा गया है कि 'स्थान' के आगे बहुवचन आता है पर 'बहुत-सी जगह पर' नहीं भी आता। दर्शन, प्राण, आँसू, हस्ताक्षर आदि शब्द नित्य बहुवचनान्त हैं और इनका प्रयोग भी बहुवचनान्त ही होना चाहिए, पर 'जोड़ा' दो होने पर भी एकवचनान्त होता है। इसलिए लिखते समय इन बातों के साथ-साथ योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति युक्त पदों का भी ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो वाक्य का कुवाक्य बन जाएगा।

१०

* * *

स्वभावोक्ति स्वयं अलंकार है

यदि हम पूर्व निर्दिष्ट मार्ग पर चलें और छोटे-छोटे साधारण (सरल) वाक्य लिखें तो अशुद्धियों के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। जब हम अपनी स्वाभाविकता छोड़कर दूसरों की नकल करने लग जाते हैं, तब हम उपहासनीय बन जाते हैं। स्वाभाविकता भी तो एक स्वतन्त्र अलंकार है। क्या कारण है कि किसी छोटे बच्चे को देखते ही हमारा मन नाच उठता है? यही तो कि उसमें स्वाभाविकता है, अकृत्रिमता है और सरलता है। इसीलिए हम उसे गोद में लेने के लिए लपक पड़ते हैं। यदि हमारा कोई बाह्य वेश या पद ऐसा करने में प्रतिबन्धक हो तो भी हम उसके खिले वदन पर मुख या हाथ लगाकर अपनी हार्दिक वत्सलता प्रगट कर ही जाते हैं। यह है स्वाभाविकता जो अलंकार ही नहीं सब अलंकारों की माँ भी है।

(चित्र में) पञ्चम जार्ज तथा उनकी पत्नी मेरी के साथ बैठे हुये राष्ट्रपिता गाँधीजी, देशबन्धु मालवीय जी और भारतकोकिला सरोजिनी जी कैसी सुशोभित हो रही हैं। गाँधीजी का वेश हमारे पूर्वजों की स्मृति ताजी कर देता है। मालवीय जी के ललाट पर लगा हुआ चन्दन का तिलक उन्हें भारत का तिलक ही बना देता है। यदि कहीं वे अपने गले पर नकटाई लगा या बाँध लेते तो भारत का नाक ही कट जाता और सरोजिनी जी की साड़ी ने तो आजकल के तितली-वेश को बिलकुल ही नगण्य बना दिया। इसलिए हमें अपनी स्वाभाविकता का सदा ध्यान रखना चाहिए।

यह बात दूसरी है कि पुराने जमाने की हमारी बूढ़ियाँ काम कम करने के लिए अपना कान-नाक और शरीर जगह-जगह से बिंधा और गुदवा लेती थीं तथा अलंकारों से लदी रहती थीं। पर आज की हमारी देवियाँ तो अधिक काम करने के लिए अपने मस्तक पर एक लाल बिन्दी, कानों में हलके काँटे और हाथों में एक-एक चूड़ी ही अलं समझती हैं। पहले हमारी भाषा भी अलंकारों से अवश्य लदी हुई होती थी पर आज तो उसने अपने सब कृत्रिम अलंकार उतारकर दूर फेंक दिए हैं। वह

अब स्वाभाविकता की ओर बढ़ रही है। इस स्वाभाविकता की दौड़ में हमारी लड़कियाँ तो इतनी आगे बढ़ गई हैं कि उनमें कुछ ही कमी रह गई है; नहीं तो गार्गी बनी ही पड़ी हैं। यह भी खुशी की बात होगी कि हम स्वतन्त्रता की तरह अपना पुराना वैदिक काल भी अपनी आँखों देखते चलेंगे।

मेरी राय में नए लेखकों को अलंकारों के फेर में नहीं पड़ना चाहिए। अलंकार तो कहने की रीतियों का नाम है। अलंकार स्वयं आते हैं, लाए नहीं जाते। जहाँ हम उन्हें लाने की चेष्टा करते हैं, वहीं हमसे भूलें बन जाती हैं। 'उन लोगों को कुत्ते की तरह घसीटा गया', क्या जिस तरह कुत्ता किसी मुरदार को घसीटता है, उस तरह? अथवा जिस तरह मरे कुत्ते को घसीटते हैं उस तरह? पहला अर्थ तो हमारे अभिप्राय से बहुत ही दूर जा पड़ता है। दूसरा इसलिए ठीक नहीं कि नियम है 'उपमा में उपमान और उपमेय का समान संख्या (यदि हो) और समान लिंग होता है'। उपमेय (लोग) तो बहुत हैं, पर उपमान (कुत्ता) एक ही है। अतः होना चाहिए 'कुत्तों की तरह'। पर 'उन सब स्त्रियों के मुख चाँद के समान हैं, में 'चाँदों के' नहीं हो सकता, क्योंकि लोक में चाँद एक ही प्रसिद्ध है।

उपमा अलंकार सब से सुगम और सबसे कठिन है। यह एक ही अलंकार नट की तरह वेश बदल कर भाषा में बार-बार आता रहता है। जब हम इसके स्थान पर कोई दूसरा अलंकार बैठा देते हैं; तब अलंकारविद् हमारी इस अज्ञता पर हँस देते हैं।

"किंसुक मुकुल सुजान जिय परत भौंर शुक तुण्ड।
सोऊ जामुन भ्रांतिसों गहत बहुत अलिमुण्ड॥"

यह भ्रांतिमान् अलंकार का उदाहरण है।

'भ्रांतिमान्' अलंकार में द्रष्टा को अवश्य हँसी आती है और उसमें भ्रांति, आशंका आदि कोई शब्द नहीं होना चाहिए। देखिए—

एक दिन कनुआ मैया मक्खन चुराने के लिए एक गोपी के घर में जा घुसे। घर में कोई नहीं था, जा बैठे सरकार आसन पर और लगे मक्खन उड़ाने। खाते भी जाते हैं और साथ-साथ इधर-उधर ताकते भी जाते हैं। अचानक सामने के शीशे पर दृष्टि जा पड़ी जिसमें निज का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा। बस, गुड़ गोबर बन गया। लगे सोचने—गोपी इसे मक्खन की रखवाली के लिए यहाँ बैठाकर चली गई है। यह गोपी को बतला देगा, गोपी मैया से कह देगी और मैया मुझे खूब मारेगी-पीटेगी। हाय! मुझे अब क्या करना चाहिए? चतुर-शिरोमणि तो हैं ही, लगे उससे मित्रता गाँठनें।

'लो मित्र! तुम भी मक्खन खाओ, हम-तुम एक-से ही तो है, हमारी तुम्हारी खूब पटेगी। आज से हम-तुम साथ-साथ चोरी करने जाया करेंगे। (लो, खाओ, उसके मुख पर मक्खन लगाते हैं, पर मक्खन नीचे गिर जाता है)। प्यारे! तुम रूठ

क्यों गए, थोड़ा है तो और ले लो। देखो मित्र! मैं तुम्हारी 'हा हा' खाता हूं और तुम्हारे पांव पड़ता हूं। गोपी को नहीं बताना, गोपी मैया से कह देगी और मैया मुझे मारेगी-पीटेगी और होए वाली अँधेरी कोठड़ी में बन्द कर देगी'।

गोपी एक ओर छिपी-छिपी यह सारी लीला सुन और देख रही है। बताइए, गोपी के मुख पर क्या होगा? मुस्कराहट।

दूसरा उदाहरण—तीन यात्री जा रहे थे। एक था नाई, दूसरा था वैज्ञानिक और तीसरा था गंजा। जंगल में उन्हें रात पड़ गई। वैज्ञानिक ने समय विभाग बनाया कि दस से बारह तक नाई, बारह से दो तक मैं और दो से चार तक गंजा पहरा देगा। थके तो थे ही, सो गए। नाई जागता रहा। उसे भी झपकी आने लगी। उसे एक युक्ति सूझी। उसने अपना उस्तरा लिया और वैज्ञानिक का सिर तरबूज जैसा बना दिया। गरमी का समय था। ठंडे पानी के स्पर्श से वैज्ञानिक और भी गाढ़ निद्रा के वश हो गया। इतने में पहरे का समय भी हो गया। नाई ने उसे जगाया और कहा 'साहब! उठिए अब मैं सोता हूँ।' साहब उठे, मुंह और सिर पर हाथ फेर कर बोले 'ऊँह! नाई बहुत ही मूर्ख है, समय था मेरा और जगा दिया गंजे को'।

३—छोटा बच्चा तालाब के किनारे बैठा-बैठा एक लड्डू खा रहा था। आधा खा लिया था। आधा पानी में गिर गया। पानी में बच्चे ने हाथ मारा तो लड्डू नहीं मिला। बच्चे ने सोचा, हैं! यहां दिखाई तो कोई दे नहीं रहा। फिर लड्डू कौन ले गया? हो-न-हो, कोई पानी में जरूर बैठा होगा। जब वह पानी में औंधा झांका तो उसे एक बच्चा दिखाई दिया। लड़का रोता-रोता अपने बाबा के पास गया और बोला—बाबा, वहां एक लड़का बैठा है, उसने मेरा लड्डू छीन लिया। बूढ़ा गुस्से में भरकर तेजी से उसे डांटने के लिए गया। जब बूढ़े ने पानी में देखा तो उसे बच्चे के स्थान पर एक बूढ़ा दिखाई दिया। बूढ़ा बोला—"तेरे मुंह पर सफेद दाढ़ी आई है। तुझे शर्म नहीं आती, बच्चे के साथ ठिठोली करता है।"

४. वातानुकूलित शौचालय के किवाड़ पर शीशा जड़ा हुआ था। एक भाई साहब, पेशाब करने के लिए शौचालय की ओर गए। क्या देखते हैं कि एक आदमी उसमें खड़ा है। वे लौट आए। जब-जब वे वहां गए तब तब उन्होंने उसे वहीं खड़ा पाया। पेशाब का जोर, गुस्से का जोर, स्टेशन पर रेलगाड़ी रुकते ही वे गार्ड के पास गए और बोले, देखिए साहब, एक ऐसा बेवकूफ आदमी टट्टी में घुसा है कि निकलता ही नहीं। गार्ड बोला—चलिए, अभी मैं उसे पुलिस के हवाले करता हूँ। जब गार्ड ने देखा—दाढ़ी मूछ है, काली टोपी एवं काला कोट वे पहने हुए हैं तो गार्ड बोला—यह रेलवे का आदमी है, इसे हम कुछ नहीं कह सकते।

आप इसे अलंकार मानें या न मानें, हमें इससे कोई मतलब नहीं, पर जैसा विषय हो वैसी भाषा होनी चाहिए और उसमें स्वाभाविकता का होना परम आवश्यक है, जैसे—हम छोटे बच्चों को 'लल्ला या ललुआ', बराबर वालों को 'श्रीमान्' और

बड़ों को 'आप' बोलते हैं, वैसे ही लिखना भी चाहिए। यह विषयान्तर है कि कुछ लोग 'तांगेवाले ! दुपट्टा उड़ा जाय रे' भी बोलते-फिरते हैं।

मतलब यह कि भाषा स्वाभाविक तथा शुद्ध होनी चाहिए। स्वाभाविकता तथा शुद्धता अलंकारों का भी अलंकार है। जिस स्त्री की नाक बहती हो और शरीर पर मन-मन मैल जमी हो तो उस पर अलंकार क्या शोभा देंगे ? वनवासिनी शकुन्तला ने वल्कल के अतिरिक्त दूसरा कोन-सा अलंकार धारण किया था ? जिससे अनेक अलंकृत रमणियों से सेवित दुष्यन्त भी यह कह ही उठा कि 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' अर्थात् वह कौन-सी चीज है, जो स्वाभाविक सुन्दर लोगों के संपर्क में आकर मण्डन (अलंकार) नहीं बन जाती ? अर्थात् सभी बन जाती हैं।

११

* * *

दोष

जो किसी प्रकार से हमारे वाक्यों का महत्त्व कम कर दें, वे दोष कहलाते हैं। पहले हम जितने उदाहरण दिखा आए हैं, वे सब-के-सब दोष-युक्त हैं पर वे सब एक तरह के नहीं। यदि हम उनका अलग-अलग नाम रखना चाहें तो इस प्रकार रख सकते हैं:—

१. च्युत-संस्कारता

व्याकरण की दृष्टि से किसी पद का अशुद्ध होना 'च्युत-संस्कारता' दोष है। व्याकरण सम्बन्धी स्खलनवाले सभी पद या वाक्य इसके उदाहरण हैं। प्रायः नए लेखकों की भाषा में यही दोष सबसे अधिक आता है। वे लोग व्याकरण देखे बिना ही अपनी मन-मरजी से प्रयोग घड़ते चले जाते हैं। जैसे—

१. मैंने रो दिया।

२. मैंने हँस दिया।

३. मैंने सो दिया।

४. मैंने जाग दिया।

५. मैंने बढ़ा।

६. मैंने डर गया।

७. 'मैं मर लिया' आदि अशुद्ध प्रयोग हैं, कारण कि अकर्मक धातुओं के बाद सकर्मक धातु का प्रयोग नहीं होता। 'मर' 'रो' 'हँस' आदि अकर्मक धातुओं के बाद सकर्मक 'दे' धातु का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु अकर्मक 'जा' 'पड़' आदि का ही प्रयोग करना चाहिए। सकर्मक धातु के भूतकालिक रूप के प्रयोग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है। इसलिए 'मैं रो पड़ा' 'मैं हँस पड़ा' 'मैं जाग पड़ा या जाग गया' 'मैं डर गया' 'मैं मर चुका' आदि होना चाहिए। 'मैं मर लिया' लिखना या बोलना अशुद्ध है क्योंकि अकर्मक 'मर' धातु के बाद सकर्मक 'ले' धातु का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

'राम ने खाना है' 'राम ने जाना है' रूप अशुद्ध हैं, क्योंकि योग्यता, इच्छा आदि अर्थक 'खाना' 'जाना' आदि के योग में कर्ता में 'को' चिह्न आता है। यह 'को' उपपद चतुर्थी का है।

'भगवान का स्मरण करके पुनर्जन्म नहीं होता' लिखना और बोलना गलत है, क्योंकि 'कर' या 'करके' आदि कृदन्ती प्रयोग का तथा गणी क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। यहाँ स्मरण का कर्ता मनुष्य है तथा 'हो' धातु का कर्ता जन्म है। अतः अशुद्ध प्रयोग है। होना चाहिए—'स्मरण करने से'। 'मैं खाना खाकर पाठशाला जाऊँगा' लिखना-बोलना शुद्ध है, क्योंकि जो 'खा' धातु का कर्ता है वही 'जा' धातु का कर्ता है।

२. अवाचकता

जब हम कोई ऐसा शब्द रख जाते हैं ; जो हमारा मनोनीत अर्थ प्रगट नहीं करता, तब 'अवाचकता' दोष आ जाता है। जैसे—

१. पूजो देश के धवल चरण।

२. अपने भावों को सुन्दर ढंग से सुन्दर भाषा मे प्रकट करने का नाम ही 'लेखन कला' है।

यहां 'धवल' शब्द 'पवित्र' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर 'धवल' शब्द पवित्रता का वाचक नहीं। अतः 'अवाचकता' दोष है। 'सुन्दर भाषा में' सुन्दर शब्द 'शुद्ध' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। पर 'सुन्दर' शब्द 'शुद्धता' का वाचक नहीं। यह दूसरी बात है कि शुद्ध वस्तु मे भी सुन्दरता रहे। 'टट्टी घर' सुन्दर तो हो सकता है, पर 'शुद्ध' नहीं। अतः इसमे उक्त दोष है।

३. पुनरुक्ति

जब एक ही वाक्य में कोई शब्द दो बार आ जाता है या एक अर्थ के वाचक दो शब्द आ जाते हैं, तब 'पुनरुक्ति' हो जाती है (शब्द-पुनरुक्ति और अर्थपुनरुक्ति)। शब्द-पुनरुक्ति के कुछ उदाहरण—

१. आपमे जिन 'आवश्यक' गुणों की 'आवश्यकता' है।

२. मुसलमान 'लोगों' में जो 'लोग' अत्यन्त धर्मपरायण थे।

३. दो वर्षों के 'बीच' भारत और ब्रिटेन के 'बीच' जो कटुता हुई है।

४. इस 'प्रकार' वह अनेक 'प्रकार' के बहाने बनाने लगा।

५. यही वे 'कारण' हैं जिनके 'कारण' हैदराबाद मे अशान्ति बढ रही है।

६. भारत सरकार ने एक 'आदेश' निकाल कर उन्हें यह 'आदेश' दिया है।

अर्थपुनरुक्ति

१. 'इधर आजकल' यह देखने मे आ रहा है।

२. 'सारे' देश भर मे यह बात फैल गई।

३. मैं 'पूरी' शक्ति 'भर' यह काम करूंगा।
४. 'सिवा' आपको 'छोड़कर' कोई ऐसी बात नहीं कहता।
५. उसके मन की 'थाह' का 'पता' नहीं चलता।
६. किसी 'और दूसरे' आदमी को वहां भेजो।
७. इससे 'मर्यादा' की 'सीमा' टूट गई।
८. आप अपनी 'ताकत के बल' पर यह काम करना चाहते हैं।
९. 'लेकिन' (परन्तु या पर) 'फिर भी' मैं आपकी बात मान लूंगा।
१०. मैं आज 'प्रातः काल के समय' वहां गया था।
११. वे 'परस्पर एक दूसरे' को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।
१२. वह इस बात की 'व्यवस्था' का कोई 'प्रबन्ध' नहीं कर सकता।
१३. हमारे 'तरुण नवयुवकों' की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध नहीं।
१४. 'कृपया' यह बतलाने का 'अनुग्रह' करें।
१५. उन्हें अपने 'अहंकार' का 'गर्व' है।
१६. उन्हें 'मृत्युदण्ड की सजा' मिली है।
१७. यह एक ऐसा कार्य है जो मुझसे 'सम्भव' नहीं 'हो सका'।
१८. यह काम 'क्योंकर' और 'कैसे' हुआ ?
१९. 'व्यर्थ' रुपए देने से कोई 'लाभ नहीं' ?
२०. इसके 'बाद फिर' यह हुआ।
२१. थोड़ी देर बाद वे 'वापस लौट' आए।
२२. वे सब काल 'चक्र के पहिए' के नीचे पिस गए।
२३. यहां 'प्लेग' के 'खतरे' का डर है।

लड़ाई-झगड़ा, धन-दौलत, मार-पीट, भगदड़, आदि प्रचलित शब्दों में यह दोष नहीं होता।

जहां उद्देश्य-प्रतिनिर्देश्य-भाव हो; वहां शब्द परिवर्तित नहीं करने चाहिए—

१. १० 'मनुष्य' मरे और १७ 'आदमी' घायल हुए।
२. आपकी बुद्धि ठीक 'राह' छोड़कर गलत 'रास्ते' पर चलने लगी है।
३. चालाक लोग काम पड़ने पर 'गधे' को भी बाप बना लेते हैं और काम हो जाने पर बाप को 'खर' समझने लगते हैं।

दोनों स्थानों पर दोनों शब्दों में से एक-एक ही शब्द रखना चाहिए।

पहले उदाहरण में यदि 'इधर' शब्द को देश का वाचक मान लें एवं काल का वाचक न मानें, नवम उदाहरण में 'लेकिन' शब्द को अस्वीकारार्थक मान लें तथा सोलहवें उदाहरण मे 'मृत्यु-दण्ड और सजा' में भेद की कल्पना कर लें (जैसे—सोमवार के दिन आऊँगा) तो पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाएगा।

४. भग्न-प्रक्रमता

जब हम किसी वाक्य का आरम्भ एक प्रकार से करते हैं और समाप्ति किसी दूसरे प्रकार से ; तब यह दोष वाक्य में आ जाता है। जैसे—

१. 'मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूं उसका कारण वह है'। 'यह' शब्द से उठाया है और 'वह' शब्द से समाप्त किया है। इसलिए वाक्य दूषित हो गया। 'उसका' के स्थान पर 'इसका' होना चाहिए, या 'यह' के स्थान पर 'जो'।

२. 'मैंने आपको वह पत्र, जो उस रूप में लिखा था, इसका उदाहरण यह था कि···' 'इसका' नहीं 'उसका' होना चाहिए।

३. 'हम लोगों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके गरीबों की सहायता की जाए' में 'हम' उत्तम पुरुष से वाक्य आरम्भ हुआ है और उत्तम पुरुष से ही समाप्त होना चाहिए। 'हम लोगों का कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके गरीबों की सहायता करें' आदि।

५. अधिक पदता

जहाँ जिस पद के निकाल देने पर भी अर्थ में कोई कमी न आए, वहाँ उस शब्द के रहने पर 'अधिक-पदता' दोष हो जाता है। जैसे—

१. इस काम के लिए वही आदमी जाना चाहिए जो 'किसी समय' इस पद पर रह चुका हो।
२. वे अपनी प्रतिज्ञा 'के शब्दों' पर दृढ़ रहें।
३. आप ऐसी बात कह रहे हैं कि जिसका 'कि' मुझे स्वप्न में भी ध्यान नहीं था।
४. यह ऐसा सिद्धान्त है जिसकी 'कि' सत्यता निश्चित है।
५. आप चाहें यहाँ रहें 'और' चाहे वहाँ जाएँ।
६. या तो आप बैठे रहें 'और' या आप चले जाएँ।
७. एक घर जो खाली पड़ा था, 'उसे' जला कर राख कर दिया गया।
८. कुछ पशु खेती के काम में आने के सिवा 'वे' धर्म की दृष्टि से भी पूज्य हैं।
९. उसकी अवस्था इतनी खराब हो गई है कि 'उसे' कहा नहीं जा सकता अथवा 'वह' कही नहीं जा सकती।
१०. उसकी आवाज कान में सुनाई पड़ी। 'कान में' या 'सुनाई' होना चाहिए।
११. वह 'खाने पीने के' व्यंजन बनाने में मदद दे रही थी।
१२. तुम कभी तीज-त्योहार पर भी नहीं आते 'हो'।
१३. मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता हूँ।
१४. साहित्यिक रचना 'भी' इस नियम का अपवाद नहीं है।

गुजराती में 'नहीं' को 'नथी' बोलते हैं और 'है' को 'छे'। मुझसे एक व्यक्ति

ने पूछा कि 'शास्त्री जी ! म्हारी पोथड़ी अठियां छे ? (मेरी पुस्तक यहाँ है ?) मैंने उत्तर दिया 'नथी छे'=नहीं है। सुनने वाले सब हँस पड़े। अनन्तर सोचते-सोचते मैं इस सिद्धांत पर पहुँचा कि 'नहीं' के साथ 'हो' धातु के वर्तमान तथा विध्यर्थक रूप नहीं आने चाहिए। हाँ, भूत और भविष्यत् आ सकते हैं, जैसे—'वह वहाँ नहीं था' 'वह वहाँ नहीं होगा' आदि। जैसे 'हाँ या ना' 'हो न हो' तो होता है, पर 'ना या हाँ' 'न हो हो' नहीं होता ; वैसे—'है नहीं' तो हो सकता है। पर 'नहीं है' कभी नहीं हो सकता।

६. न्यूनपदता

जहाँ जिस पद की जरूरत हो वहाँ उसे न रखना 'न्यूनपदता' दोष होता है। जैसे—

१–'देश की जितनी दुर्दशा हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी' में 'आज' पद न्यून है।

२–'संस्कृत में जो स्थान वाल्मीकि की रामायण का है, वही तुलसीकृत रामायण का भी है'। 'हिन्दी में' पद न्यून है।

३–'तुम्हारे भाई ने कल घर पर जो किया था वही [illegible]'। यहाँ 'आज' पद न्यून है।

४—'वहाँ जंगली फल और झरने का पानी पीकर हम [illegible]' [illegible] 'खाकर' होना चाहिए।

७. संदिग्धता

जिस वाक्य में कर्ता, कर्म आदि का निश्चय न हो सके वहाँ 'संदिग्धता' दोष होता है।

१—'प्रधान अध्यापक लड़के चुनेंगे'। प्रधानाध्यापक लड़कों को चुनेंगे ? या लड़के प्रधानाध्यापक को चुनेंगे ? संदिग्ध है।

२—'अमेरिका भारत को जर्मनी से दूना धन देगा'। अमेरिका जितना धन जर्मनी को देगा, उससे दूना ? या जर्मनी भारत को जितना धन देगा उससे दूना ? संदिग्ध है।

३—'वह बैल के मारने से मर गया'। बैल ने मारा इसलिए मर गया ? या बैल को इसने के [illegible] मर गया ? संदिग्ध है।

४—'मोहित-हरिवंश [illegible] के [illegible] भी [illegible]। क्या यह [illegible] हरिवंश की [illegible] बनाया हुआ है ? या [illegible] ने बनाया है ?

५—'यह ऐसी पुस्तक है जिसे सबको देखना चाहिए। [illegible] या पुस्तक को [illegible] ? संदिग्ध है।

८. विरोधिता

जहाँ एक ही वाक्य में दो विरोधी पदार्थों को रख दिया जाए वहाँ 'विरोधिता' दोष होता है।

१—'तब शायद' काम 'जरूर' हो जाएगा।

२—'प्रायः' ऐसे अवसर आते हैं जिनमें लोगों को 'कभी-कभी' अपना मत बदलना पड़ता है।

३—वे बिलकुल 'चुप' हैं और 'कहते' हैं कि हम इस झगड़े में नहीं पड़ेंगे।

४—आज-कल इसका प्रचार बहुत 'अधिक कम' हो गया है।

५—यह चीज सपने में भी 'मिलनादुर्लभ' है।

(चौथे उदाहरण में 'अधिक' और 'कम' को अन्योन्य विरुद्धार्थक माना है। परन्तु 'अधिक' शब्द यहाँ संस्कृत के 'तर' प्रत्यय का वाचक है। इसे किसी के साथ जोड़ दें उसी की उत्कृष्टता प्रगट कर देगा। जैसे—लघुतर=अधिक छोटा, बृहत्तर=अधिक बड़ा। हमारे मत से इसमें दोष नहीं।)

९. गर्भितता

किसी पद या वाक्यांश को अपने स्थान पर न रखकर दूसरे पदों के बीच जा रखना 'गर्भितता' दोष कहलाता है। जैसे—

१—इस लाठी से जितने तेरे हिमायती हैं, उन सबके सिर फोड़ दूँगा। (तेरे जितने हिमायती हैं, उन सबके सिर इस लाठी से फोड़ दूँगा)।

२—यह कहकर मैंने जितने आदमी दूकान में बैठे थे, उन सबको देखा। (यह कह कर मैंने उन सब आदमियों की ओर देखा जो उस दूकान पर बैठे थे)।

३—हम उनका मुँह उन्हें सौ रुपए देकर बन्द करना चाहते हैं। (हम उन्हें सौ रुपये देकर उनका मुँह बन्द करना चाहते हैं)।

४—उन लोगों ने जिस समय मैं बात कर रहा था, शोर मचाना शुरू किया। (जिस समय मैं बातें कर रहा था उस समय उन लोगों ने शोर मचाना शुरू किया)।

५—रास्ते में लेटरबक्स में मैंने जो पत्र लिखा था, वह छोड़ दिया। (मैंने जो पत्र लिखा था, वह रास्ते में लेटरबक्स में छोड़ दिया) : आदि।

१०. समाप्त-पुनरात्तता

वाक्य पूरा हो जाने पर क्रिया के बाद कोई फिर शब्द बैठा देना, 'समाप्त-पुनरात्तता' दोष है। जैसे—

1—हम और तुम चलेंगे, साथ में।

२—मैं आजकल पुस्तक पढ़ रहा हूँ, अच्छी।
३—इतना पंडितों की सेवा में उपस्थित किया गया, थोड़े में।
४—अन्यत्र सन्धि करना न करना ऐच्छिक है, लिखने में।

११. विधेयाविमर्श

वाक्य में पहले अनुवाद्य (उद्देश्य) और बाद में विधेय होता है। अथवा जिस बात पर जोर देना हो वह पहले रखी जाती है। जब इसके अनुसार वाक्य नहीं होता तब उसमें 'विधेयाविमर्श' दोष हो जाता है।

१—आप जहां तक हो सके इस बात का प्रयत्न करें। (जहाँ तक हो सके आप इस बात का प्रयत्न करें)।
२—मैंने जब तक सम्भव था, तब तक उन्हें कष्ट नहीं दिया। (जब तक सम्भव था, तब तक मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया)।
३—यह अभी कहीं बैठ पाया नहीं। (वह अभी कहीं बैठ नहीं पाया)।
४—एक दिन बुड्ढे होने पर कुए पर बैठा था। (बुड्ढे होने पर एक दिन कुए पर बैठा था)।
५—यह बात हृदय से सम्भव है वे न मानें। (सम्भव है यह बात वे हृदय से न मानें)।
६—उसके पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने गोविंद से पूछा। (गोविन्द के पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने उससे पूछा)। सर्वनाम सदा संज्ञा के बाद ही आते हैं, पहले नहीं।

अंग्रेजी ढंग के कारण भी यह दोष आ जाता है।

१—न केवल यही बल्कि वे वहाँ से चले भी आए। (यही नहीं, बल्कि वे यहाँ से चले भी आए)।
२—यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा, ऐसी हमें आशा है। (हमें ऐसी आशा है कि यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा)।
३—आप कल वहाँ जाएँगे, ऐसा मैं समझता हूँ। (मैं समझता हूँ कि कल आप वहाँ जाएँगे)।
४—वह समय काम निकालने का होने से मैं चुप रहा। (वह समय काम निकालने का था, इसलिए मैं चुप रहा)।
५—हम वहाँ नहीं गए थे, क्योंकि उन्होंने हमें नहीं बुलाया था। (उन्होंने हमें नहीं बुलाया था, इसलिए हम वहाँ नहीं गए)।
६—'उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया' का तो यही अर्थ होगा कि मुकदमा किसी दूसरे पर चलाया गया है, उन पर नहीं। इसलिए [illegible] चाहिए।

७—पूर्व इसके कि कोई हँसे हम स्वयं हँस पड़ते हैं। (किसी के हँसने से पहले हम स्वयं हँस पड़ते हैं) ।

८—बिना किसी सहायता के यह काम नहीं हो सकता। (किसी की सहायता के बिना यह काम नहीं हो सकता) ।

९—इसके बदले कि आप यहाँ आएँ मैं ही आपके यहाँ आऊँगा। (आपके यहाँ आने के बदले मैं ही आपके यहाँ आऊँगा)।

१०• अच्छा हो कि आप पुस्तकें दे दें। (आप पुस्तकें दे दें तो अच्छा हो)।

१२. ऊँट-हिलोरा

जिसके उच्चारण करने में ऊँट के हिलोरों का-सा धक्का लगे, वह 'ऊँटहिलोरा' दोष होता है। जैसे—

१—आजकल के स्कूलों के नवें-दसवें दरजों के विद्यार्थियों के हित के लिए।

२—बोल-चाल या समझ के क्षेत्र के बाहर के हैं।

३—वह परकीया जो अपने प्रिय के मिलन के स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी हो।

४—दैनिक समाचार पत्र के साप्ताहिक संस्करण के सम्पादक मण्डल के एक उत्साही सज्जन के दिमाग में यह बात आई।

५—इतने में कोई चमक कर आकर धक्का देकर निकल गया, आदि।

एक ही वाक्य में कोई प्रत्यय दो से अधिक बार नहीं आना चाहिए। यदि इनके बीच में 'और' आ जाए तो भी यह दोष नहीं होता क्योंकि 'और' के आ जाने से हमारी जीभ को कुछ आराम मिल जाता है।

इसलिए हमें अपने वाक्य सदा इन दोषों से बचाते रहना चाहिए, क्योंकि ये वाक्यों का महत्व कम कर देते हैं।

१२

* * *

एक चुस्त भाषा का ढीलापन

अध्ययन करना दूसरे की आँखों देखना है और मनन करना अपनी आँखों। इसलिए विद्यार्थियों के मनन के लिए मैं उन निबन्धों की भाषा के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ, जिनके सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने कहा है कि "यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो 'निबन्ध' गद्य की कसौटी है। खेद है कि समास शैली पर ऐसे विचारात्मक निबन्ध लिखने वाले—जिनमें बहुत ही चुस्त भाषा के भीतर एक पूरी अर्थ-परम्परा कसी हो—अधिक लेखक हमें न मिले" (हिन्दी साहित्य का इतिहास)। आइए थोड़ा मनन कीजिए—

१. 'बड़े-बड़े सूक्ष्म भावों का अभिव्यंजन कर देती है' 'बड़ा' और 'सूक्ष्म' दो पारस्परिक विरोधी पदार्थ हैं। फिर तेज और अन्धकार को एक साथ कैसे बैठा दिया ? इसके स्थान पर होना चाहिए 'सूक्ष्म से सूक्ष्म' भावों का।

२. 'दोनों प्रकार के निबन्धों के बीच की रेखा बड़ी क्षीण है' में भी ऊपर वाली बात है।

३. 'बड़े सुन्दर नीति के दोहे लिखे हैं' में प्रश्न होता है कि वह कौन-सी छन्दः पुस्तक है, जिसमें बड़े दोहों का लक्षण आता है ? हमने तो सभी दोहे चौबीस-चौबीस मात्राओं के ही देखे हैं। यदि 'बड़े' को सुन्दर का विशेषण मान लिया जाए तो भी उद्धार नहीं, क्योंकि सुन्दरता में बड़ा-छोटापन नहीं होता। भले ही उसमें न्यूनाधिकता का भाव होता हो।

४. 'गाजर-मूली की तरह नष्ट होते नहीं देख सकते' नष्ट (नाश) में सदा अदर्शन का ही भाव रहता है। यहाँ तो गाजर-मूली के टुकड़े स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसलिए 'कटते नहीं देख सकते' होना चाहिए।

५. 'चित्रलेखा आदि कुशल चित्रकर्तियों का…' में अपनी ओर से तो पुनरुक्ति से बचने की पूरी-पूरी चेष्टा की गई। पर एक दोष के स्थान पर दूसरे

दो दोष आ ही गए। पहले तो 'चित्रकत्रियों' में 'श्रुतिकटु' दोष है। दूसरे—चित्रों का 'अंकन' 'लेखन' या 'बनाना' ही होता है, 'करना' नहीं। इसलिए 'अवाचकता' दोष है। 'चित्रकार' शब्द की ओर मत देखिएगा। वह तो अब चल पड़ा है। उसमें की खटक दूर हो गई है। यहाँ तो 'चित्र-लेखा आदि कुशल लेखिकाओं का' लिखने में ही कुछ लावण्य है तथा लकारानुप्रास भी। 'चित्रकार' की देखा-देखी 'कहानीकार' लिखना भी ठीक नहीं, क्योंकि कहानी या तो लिखी जाती है या कही जाती है, की नहीं जाती।

६. 'काव्य का अध्ययन निरापत्तिजनक है' में भी दो विरोधी भाव एक-साथ आ गए हैं। 'निर्' अभाव का वाचक है और 'जनक' भाव का। फिर एक वाक्य में ही नहीं, एक ही पद में दोनों का गठ-बन्धन कैसा ? दूसरे यदि 'निरा' के साथ सवर्णदीर्घ मान लिया जाए तो अर्थ का ही अनर्थ हो जाएगा। इसलिए इसके स्थान पर छोटा, हलका और अभ्रामक 'निरापद' पद ही लिखा जाना चाहिए।

७. 'हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं' में के 'स्त्री' शब्द ने किसकी व्यावृत्ति की ? कौन-सी विशेषता पैदा की ? केवल व्यर्थ और अधिक है। लेखिकाएँ तो स्त्रियाँ ही होती हैं, पुरुष नहीं।

८. 'डाक्टर मुल्कराज, आनन्द और सज्जाद आदि लेखक प्रवर्तक हुए' में 'और' नहीं होना चाहिए।

९. 'मीरा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है' 'आदरपूर्वक' लिया जाना चाहिए।

१०. 'जयशंकर प्रसाद पर पाँच ग्रन्थ लिखे गए हैं' ठीक है, भोज-पत्र पर जैसे लिखते हैं, वैसे लिखे भी जा सकते हैं। 'प्रसाद' के स्थान पर 'प्रासाद' हो तो कोई झगड़ा ही नहीं। पर यहाँ तो 'पर' का 'सम्बन्ध' या 'विषय' अर्थ मानकर काम चला लेंगे। पर

११. 'हाल ही में बिहारी के ऊपर एक पुस्तक निकली है'।

१२. 'आधुनिक कवियों के ऊपर कई सुन्दर ग्रन्थ निकल चुके हैं'।

१३. 'सूरदासजी के ऊपर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक बहुत उत्तम ग्रन्थ लिखा है' आदि में ; क्या करेंगे ? 'ऊपर' का तो आधार के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होता।

आइए, ऊँट के हिलोरों का भी मजा लूटिए।

१४. विदेशी भाषाओं 'के' शब्दों 'के' प्रयोग 'के' सम्बन्ध में।

१५. गुप्तजी 'के' राम देवताओं 'के' हित 'के' लिए नहीं वरन् आर्यों 'के' आदर्शों 'के' फैलाने 'के' लिए अवतरित (अवतीर्ण) हुए।

दो दोष आ ही गए। पहले तो 'चित्रकत्रियो' में 'श्रुतिकटु' दोष है। दूसरे—चित्रों का 'अंकन' 'लेखन' या 'बनाना' ही होता है, 'करना' नही। इसलिए 'अवाचकता' दोष है। 'चित्रकार' शब्द की ओर मत देखिएगा। वह तो अब चल पड़ा है। उसमें की खटक दूर हो गई है। यहाँ तो 'चित्र-लेखा आदि कुशल लेखिकाओं का' लिखने मे ही कुछ लावण्य है तथा लकारानुप्रास भी। 'चित्रकार' की देखा-देखी 'कहानीकार' लिखना भी ठीक नहीं, क्योंकि कहानी या तो लिखी जाती है या कही जाती है, की नही जाती।

६. 'काव्य का अध्ययन निरापत्तिजनक है' में भी दो विरोधी भाव एक-साथ आ गए हैं। 'निर्' अभाव का वाचक है और 'जनक' भाव का। फिर एक वाक्य में ही नहीं, एक ही पद में दोनों का गठ-बन्धन कैसा ? दूसरे यदि 'निरा' के साथ सवर्णदीर्घ मान लिया जाए तो अर्थ का ही अनर्थ हो जाएगा। इसलिए इसके स्थान पर छोटा, हलका और अभ्रामक 'निरापद' पद ही लिखा जाना चाहिए।

७. 'हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं' में के 'स्त्री' शब्द ने किसकी व्यावृत्ति की ? कौन-सी विशेषता पैदा की ? केवल व्यर्थ और अधिक है। लेखिकाएँ तो स्त्रियाँ ही होती हैं, पुरुष नही।

८. 'डाक्टर मुल्कराज, आनन्द और सज्जाद आदि लेखक प्रवर्तक हुए' में 'और' नही होना चाहिए।

९. 'मीरा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है' 'आदरपूर्वक' लिया जाना चाहिए।

१०. 'जयशंकर प्रसाद पर पाँच ग्रन्थ लिखे गए हैं' ठीक है, भोज-पत्र पर जैसे लिखते हैं, वैसे लिखे भी जा सकते हैं। 'प्रसाद' के स्थान पर 'प्रासाद' हो तो कोई झगड़ा ही नही। पर यहाँ तो 'पर' का 'सम्बन्ध' या 'विषय' अर्थ मानकर काम चला लेंगे। पर

११. 'हाल ही मे बिहारी के ऊपर एक पुस्तक निकली है'।

१२. 'आधुनिक कवियो के ऊपर कई सुन्दर ग्रन्थ निकल चुके हैं'।

१३. 'सूरदासजी के ऊपर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक बहुत उत्तम ग्रन्थ लिखा है' आदि में क्या करेंगे ?- 'ऊपर' का तो आधार के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होता।
आइए, ऊँट के हिलोरों का भी मजा लूटिए।

१४. विदेशी भाषाओं 'के' शब्दो 'के' प्रयोग 'के' सम्बन्ध मे।

१५. गुप्तजी 'के' राम देवताओ 'के' हित 'के' लिए नही वरन् आर्यों 'के' आदर्शों 'के' फैलाने 'के' लिए अवतरित (अवतीर्ण) हुए।

१६. कई लोग अलंकारों को भी साधु 'की' गाय 'की' टांग 'की' भांति लगा देते हैं।

१७. हमको इतिहास 'को' शुष्क भाषा 'की' तोता-रटन्त 'की' आवश्यकता नहीं।

१८. तुलसीदासजी भी इन्ही 'के' सम्प्रदाय 'के', बाबा नरहरिदास 'के' शिष्य थे।

१९. तुलसीदासजी 'की' स्त्री रत्नावली 'की' कविता 'की' भी चर्चा हो चली है आदि में 'के' और 'की' की छटा देखते ही बनती है।

यहाँ तक तो हुई बाह्य आकृति की बात। अब लीजिए, अन्तःप्रकृति—

२०. 'चन्दवरदाई आदि महाकवि लेखनी के ही शूर न थे वरन् तलवार के भी वीर थे।' भग्नप्रक्रमता हो गई, जिससे 'शूर' और 'वीर' भिन्नार्थक-से प्रतीत होते हैं। दोनो स्थानों पर एक ही शब्द होना चाहिए 'शूर' या 'वीर'। पुनरुक्ति से न डरिएगा, वह तो उद्देश्य-प्रति निर्देश्य को छोड़कर ही होती है।

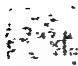
२१. 'समास शैली इतनी कठिन न होनी चाहिए कि रचना पढ़ने वालों को लोहे के चनों की भांति कठिन बन जाए'। एक तो 'कठिन' शब्द की पुनरुक्ति। दूसरे लोहे के चने कठिन बनते नहीं—होते ही हैं। इसलिए होना चाहिए 'रचना लोहे के चने न बन जाए'।

२२. 'वह चोट ऐसी होती है जो होती तो सुनार की तरह धीमी लेकिन काम लुहार की चोट से भी अधिक करती है'। हाँ, वह सुनार अधिक बैठने के कारण धीमे-धीमे चलता होगा। होना चाहिए 'सुनार की चोट की तरह हलकी'।

२३. 'सफल लक्ष्यवेध करने वाले अर्जुन की भाँति कहानीकार भी अपनी दृष्टि को केन्द्र से बाहर नहीं जाने देता। वह चिड़िया को नहीं, चिड़िया के सिर को देखता है'। 'चिड़िया' शब्द की पुनरुक्ति। 'सफल लक्ष्यवेध करने वाले' विशेषण-वाक्य से प्रसिद्ध अर्जुन से किसी दूसरे अर्जुन की प्रतीति। अर्जुन ने चिड़िया का सिर कब काटा? 'कहानीकार' लिखना भी ठीक नहीं। होना चाहिए 'कहानी लेखक भी अर्जुन की भाँति अपनी दृष्टि लक्ष्य पर ही टिकाए रहता है, उसे मछली नहीं, किन्तु उसकी आंख ही दिखाई देती है'।

२४. 'वास्तव में सुदर्शन जी, कौशिक जी और प्रेमचन्दजी के साथ कहानी लेखकों की 'वृहत्त्रयी' में रखे जा सकते हैं'। यह तो 'बृहद्द्वयी' ही हुई। इनके रखने पर ही 'वृहत्त्रयी' होगी। यदि आप सुदर्शनजी को भी 'बृहत्त्रयी' में ही मान रहे हैं तो रखेंगे किसको ? वे तो पहले ही उसमें विद्यमान हैं। दूसरी बात यह है कि आपको इस बृहत् को उठाने में भी कष्ट होगा। अतः इनका नाम ही रख दीजिएगा, आदि।

हमें भी लिखते समय अपनी दृष्टि चतुरस्र रखनी चाहिए। नहीं तो हमारी भाषा में भी ऐसे सैकड़ों दोष न चाहने पर भी आ जाएँगे। आशा है आज से आप अपनी माँ के पवित्रतम शुद्ध स्वरूप की रक्षा करने का व्रत ले ही लेंगे।



१३

* * *

नमस्तुभ्यम्

एक कवि दूसरे कवि की छाया का अपहरण कर लेता है, कुकवि=क्षुद्र-कवि दूसरे कवि के शब्द का अपहरण कर लेता है तथा तस्कर कवि दूसरे कवि के पदों का अपहरण कर लेता है। परन्तु आपने तो सारे-का-सारा ग्रन्थ ही हथिया लिया। इसलिए हे कवि-पद-लाञ्छन ! आपको बार-बार नमस्कार है।

महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक की छाया महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' नाटक में ले ली है। कालिदास ने 'महाभारत' से आख्यान लिया और भवभूति ने 'बाल्मीकि रामायण' से। जैसे शकुन्तला परित्यक्ता होकर कश्यप के आश्रम में शरण लेती है; वैसे ही सीता भी परित्यक्ता होकर बाल्मीकि के आश्रम में शरण लेती है। जैसे वन में दुष्यन्त को अपनी पत्नी की प्राप्ति से पहले अपने पुत्र भरत की प्राप्त होती है, वैसे ही वन में राम को भी अपनी पत्नी की प्राप्ति से पहले अपने पुत्र लवकुश की प्राप्ति होती है। परित्यक्त जनों को साधु लोग सदा शरण देते आए हैं। यह हुआ 'छाया' का अपहरण। अस्तु—

मैं अपने आपको राष्ट्रभाषा का पतंजलि मानता हूँ। परन्तु मासिक पत्र-पत्रिकाओं के बहुत से वाक्य मेरी समझ में नहीं आते। इसका मैं कारण ढूंढ रहा था कि डा० बदरीनाथ कपूर की 'आजकल की हिन्दी' नामक पुस्तिका मेरे हाथ लग गई। इससे विदित हुआ कि ये सब तो हिन्दी के प्रत्ययों की पोशाक पहने हुए अंग्रेजी के ही वाक्य हैं। अच्छा ! यह बनारसी साड़ी पहने क्रीतक-हृदय-विलासिनी लन्दन-निवासिनी गौरांगना है जो भारत की बिन्दीरूप हिन्दी का स्थान छीनना चाहती है। जिसके लिए आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल ने हार्दिक चिन्ता व्यक्त की है—

"मासिक पत्रिकाओं में बहुत-से लेखों को उठाकर देखिए तो उनमें व्याकरण की अशुद्धियाँ भरी मिलेंगी। हमारे सुयोग्य सम्पादक-गण यदि इस ओर ध्यान दें तो मुझे विश्वास है कि यह बुराई दूर हो सकती है। खैर, यह बुराई तो दूर हो जाएगी

पर हमारी भाषा का स्वरूप ही विकृत करने वाली एक प्रवृत्ति बहुत भयंकर रूप में बढ़ रही है—वह है अंग्रेजी के चलते वाक्यों और मुहावरों को शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद करके रखना। 'दृष्टिकोण' 'प्रकाश डालना' आदि तक तो खैरियत थी पर जब उपन्यासों में इस तरह के वाक्य भरे जाने लगेंगे; जैसे—

(१) उसके हृदय में अवश्य ही 'एक ललित कोना' होगा जहाँ रतन ने स्थान पा लिया होगा।

(२) वह उन लोगों में से न था जो 'घास को थोड़ी देर भी अपने पैरों तले उगने देते हैं'।

तब हमारी भाषा अपना कहाँ ठिकाना ढूंढेगी।"

('चिन्तामणि' दूसरा भाग, पृष्ठ २३६)।

यह विषय व्याकरण की अपेक्षा भी अधिक महत्त्व का है। इसलिए मैं ऐसी भूलों से सावधान करने के लिए 'आजकल की हिन्दी' का कुछ अंश साधिकार उद्धृत करता हूँ :

"तीस-पैंतीस वर्ष पहले की बात है। पं० केशवप्रसाद मिश्र किसी आधुनिक कवि की कविता के चरण 'मेरे जीवन के अन्तिम पाहन' का आशय समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पास गए और उनसे पूछा* "महाराज, यह क्या है ?"

शुक्ल जी ने धीरे से कहा, 'देवता, यह प्रयोग अंग्रेजी के 'दी लास्ट माईलस्टोन ऑफ माई लाईफ' की छाया है।'

पं० केशवप्रसाद जी मिश्र की विद्वत्ता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। वे हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के भी अच्छे-खासे जानकार थे। परन्तु, क्या यह आवश्यक है कि अपने वाक्यों का अर्थ लगाने के लिए हम अंग्रेजी के पण्डित ही हों ? क्या हमारी सोच अंग्रेजी के ज्ञान के बिना पंगु रहेगी ?

अंग्रेजी शासन-काल में अंग्रेजी के अध्यापक अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे कि यदि अंग्रेजी में लिखना चाहते हो तो अंग्रेजी में सोचो। अब आज हिन्दी लेखकों से हम कहते हैं कि यदि आप हिन्दी में लिखना चाहते हों, तो हिन्दी में ही सोचिए। हमारे अधिकतर लेखक तथा कवि विदेशी लेखकों की रचनाएँ पढ़ते हैं और उनके नए-नए विचार और नए-नए प्रयोग भी आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमारे लेखक ऐसे नए प्रयोगों से भी प्रभावित होते हैं,

*'मिश्रजी गए और उनसे पूछा' के स्थान पर 'मिश्रजी गए और उनसे पूछने लगे' अथवा—'मिश्रजी गए और उन्होंने उनसे पूछा' होना चाहिए। कारण कि, अकर्मक धातुओं के भूतकालिक प्रयोग में कर्ता में विभक्ति चिह्न नहीं आता, परंतु सकर्मक धातुओं के प्रयोग में कर्ता में 'ने' विभक्ति चिह्न आता है। इसलिए जहाँ दोनों प्रकार की धातुओं का एक साथ प्रयोग हो—एक ही कर्ता हो वहाँ ऐसी भूल हो जाती है। 'उन्होंने' शब्द का—कर्ता का—आक्षेप या अध्याहार नहीं हो सकता, क्योंकि वाक्य में कर्ता पहले है।

जो ठीक से उनकी समझ में नहीं आते परन्तु जो आकर्षक शब्दों में सजे हुए होते हैं। हमारा विवश लेखक ऐसे शब्दों का उल्था अपने सामर्थ्य के अनुसार करता है और होता यह है कि उसकी चोरी पकड़ी जाती है। हमारे कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिनका अध्ययन-अध्यापन अंग्रेजी में ही हुआ है और जो विशुद्ध राष्ट्रप्रेम से हिन्दी में लिखने लगे हैं। ऐसे लोगों का अंग्रेजी में सोचने का अभ्यास ही बन गया है। अधिक अवस्था के कारण ऐसे लोगों का अभ्यास तो नहीं बदल सकता, फिर भी उन्हें जागरूक तो रहना ही चाहिए।

'जैसा राजा वैसी प्रजा' यह लोकोक्ति प्रस्तुत प्रसंग में भी अपनी चरितार्थता सिद्ध करती है। मुसलमानी शासन-काल में यहाँ की प्रजा मुसलमानी रंग-ढंग का अनुकरण करती रही और अंग्रेजी शासन-काल में अंग्रेजियत में अपने को रंगती रही। कुछ दुर्भाग्य ऐसा है कि मुसलमानी शासन-काल का अन्त हुए सौ से अधिक वर्ष हो गए, फिर भी अब तक हम अपने को उसके रंग-ढंग से मुक्त न कर सके। अंग्रेजी शासन तो अभी कल की बात है और उनकी लादी तो हम स्वभावतः बहुत दिनों तक ढोएँगे ही। निश्चय ही अंग्रेजी समृद्ध भाषा है और उसके अध्येता पर उसकी छाप पड़ना भी स्वाभाविक है, परन्तु उसकी छाप हमारा आशय ही गोल कर जाए अथवा हमारी भाषा की प्रकृति को ही बिगाड़ दे, यह तो कोई बात न हुई।

हिन्दी वाटिका में सुन्दर पौधों के साथ लगे हुए परकीय झाड़-झंखाड़ भी हैं। प्रयत्न कीजिए कि ये अधिक फैलने न पाएँ और अन्ततोगत्वा कहीं हिन्दी वाटिका का रूप ही लुप्त अथवा दूषित न कर दें। यहाँ हम यह भी कहना आवश्यक समझते हैं कि हिन्दी वालों की अपेक्षा अन्य भाषा-भाषी अपनी-अपनी भाषा की प्रकृति की रक्षा के लिए अधिक सचेष्ट रहते हैं। प्रसिद्ध चेक लेखक स्मेकेल ने ठीक ही कहा है—'मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दीभाषी अपनी मातृभाषा से उतना प्रेम नहीं करते, जितना प्रेम दूसरे लोग अपनी मातृभाषा से करते हैं।'

अंग्रेजियत से ओतप्रोत नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं और साथ ही उनके हिन्दी रूप भी दिए जा रहे हैं:

१—हमारे गृह मंत्री महोदय ने उसे ही विराम-अर्धविराम बिना बदले ज्यों का त्यों सुना दिया है।—'आज' (दैनिक)

'विराम' और 'अर्धविराम' शब्द अंग्रेजी के 'फुल स्टाप' और 'कामा' के प्रभाव के द्योतक हैं। उक्त वाक्य का हिन्दी रूप होगा—बिना बिन्दु-विसर्ग बदले हमारे गृहमन्त्री ने उसे ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

२—प्रतिष्ठा की दौड़ से कोई भी मुक्त न था।—'दिनमान'

'रेस फार हाइ पोजीशन' के लिए सम्भवतः 'प्रतिष्ठा की दौड़' आया है। 'दौड़ से'''मुक्त न था' भी विचित्र प्रयोग है, जो अंग्रेजी रंग में रंगा है। उक्त का बोधगम्य और बढ़िया रूप होगा—प्रतिष्ठा के लिए होड़ लगी थी।

३—उनकी अवस्था अभी तक चिन्ता का कारण बनी है। —आकाशवाणी

उक्त वाक्य अंग्रेजी के 'इट इज स्टिल दि काज आफ एंजाइटी' का ही उल्था है, जिसे हिन्दी में इस प्रकार सामान्यतः व्यक्त किया जाता है—उनकी अवस्था अभी तक चिन्ताजनक है।

४—क्या विश्वविद्यालय सामाजिक नेतृत्व देने में सफल रहे हैं ?

—'धर्मयुग' (डॉ० हरिनारायण त्रिपाठी)

'नेतृत्व देना' सम्भवतः 'गिविंग दि लीड' से आया है, जो सामान्य हिन्दी भाषी की समझ में आने लायक भी नहीं। 'नेतृत्व करना' ही हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ठीक होगा और वाक्य का सरल रूप होगा—क्या विश्वविद्यालय समाज का नेतृत्व कर पाए ?

५—उन दिनों स्वराज्य का नाम लेना अपने आप में राजद्रोह समझा जाता था—'आकाशवाणी'

'अपने आप में' अंग्रेजी के 'इन इटसेल्फ' का अनुवाद है, जो हिन्दी की दृष्टि से प्रायः निरर्थक है। हम उक्त वाक्य को अधिक जोरदार ढंग से इन शब्दों में कह सकते हैं : 'उन दिनों स्वराज्य का नाम लेना ही राजद्रोह समझा जाता था'।

६—जब हम मंत्रों की शक्ति का वर्णन पढ़ते हैं, तब इतने आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि उसे असम्भव की कल्पना कह जाते हैं।—

साप्ताहिक हिन्दुस्तान (गोविन्द शास्त्री)

'असम्भव की कल्पना' और कुछ नहीं है 'कांसेप्सन ऑफ दि इम्पासबिल' की ही छाया है। उक्त का सहज और स्पष्ट रूप होगा '''''''''''''कि उसे कोरी कल्पना कह जाते हैं।'

७—संसार के दूसरे छोर से गोष्ठी के समस्त सदस्यों को नमस्कार भेजता हूँ।— डा० ब्रजमोहन

'नमस्कार भेजना' अंग्रेजी में 'सेण्डिग ग्रीटिंग्स' की ही छाया है, जो हमारी परम्परा के अनुकूल नहीं है। उक्त के दो अच्छे रूप हो सकते हैं :—

(क)'''समस्त सदस्यों को मेरा नमस्कार स्वीकार हो।

(ख)'''समस्त सदस्यों को मेरा नमस्कार।

लाघव सिद्धान्त के अनुसार (ख) वाक्य अधिक उपयुक्त है।

८—तुम लोगों के यहाँ की नई गाड़ी भी इसके सामने खड़ी नहीं हो सकती।

—आज

'खड़ी नहीं हो सकती' की जगह 'ठहर नहीं सकती' अधिक उपयुक्त तथा हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है। 'खड़ी नहीं हो सकती' तो 'कैन नॉट स्टैण्ड' का जूठन है।

९—ताशकन्द घोषणा के बाद अब यह कोशिश की जा रही है कि दोनों दलों के बीच के सम्बन्ध बेहतर हों और पांच अगस्त का मौसम फिर से वापस आ जाए।

—दिनमान

जब लेखक महोदय उक्त वाक्य लिख रहे थे, तो उस समय उनके ध्यान में अंग्रेजी में 'सीजन' शब्द था। 'सीजन' का एक अर्थ यह भी है—ऐसा समय, जिसमें

कोई चीज बढ़ती, पनपती या फलती-फूलती हो। परन्तु 'मौसम' शब्द का आर्थी क्षेत्र इतना व्यापक नहीं, इसलिए उक्त वाक्य में यह खटक रहा है। उक्त वाक्य की खटक तभी दूर हो सकती है, जब 'पहले के मौसम' के स्थान पर 'पहले वाला समय' अथवा 'पहले की-सी स्थिति' हो।

१०—इस भांति जनभाषा हिन्दी के मूल को इतिहास में गहरा गया हुआ भी देखा जाता है। —जैनेन्द्र कुमार

क्या इतिहास में भी कोई चीज जाती है ? इतिहास खोह या गुफा नहीं होता। यह वाक्य तो बिल्कुल नए सिरे से ही लिखने लायक है। अंग्रेजी के वाक्य 'इट्स रूट हैज गान डीप इन दि हिस्ट्री' का प्रेत ही उक्त वाक्य को चिपटा हुआ है।

११—समिति अनुभव करती है कि'''वर्तमान जन-क्षोभ कोई अप्रिय मोड़ न ले ले। —आज

उक्त वाक्य लिखते समय लेखक के मस्तिष्क में अंग्रेजी का यह वाक्य चक्कर लगा रहा होगा—'दि प्रेजेण्ट पब्लिक एजीटेशन माइट टेक ऐन अनहैपी टर्न'। हिन्दी रूप होगा—'वर्तमान जन-क्षोभ उग्र रूप भी धारण कर सकता है।'

१२—'सरकार ने इस विषय में सदन को विश्वास में नहीं लिया।'

—आकाशवाणी

'विश्वास से नहीं लिया' वस्तुतः 'डिड नाट टेक इन टू कान्फीडेंस' का शब्दानुवाद है, जिसे बिना अंग्रेजी पढ़ा-लिखा कोई आदमी किसी तरह समझ ही नहीं सकता। हिन्दी रूप हो सकता है—'सरकार ने इस विषय में सदन को विश्वास पात्र नहीं समझा।'



थी साधुबेला-आश्रम के टेलीफोन के पास एक छोटी-सी पुस्तिका पड़ी थी। मैंने वह उठाई और देखी। उस पर लिखा था 'संस्थान विचार डाइजेस्ट'। मैंने यह नाम बांचकर पुस्तिका वहीं रख दी। बीस दिन बाद मैंने वही पुस्तिका उठाई (कारण कि आज भोजन में विलम्ब था, इसीलिए समय का सदुपयोग करना चाहता था) और मैं उसे बांचने लगा। राष्ट्रभाषा-विषयक विचारों का इतना अच्छा संग्रह किया है कि सारी पुस्तिका बांचकर ही दम लिया। इस पर लिखा है कि 'यदि हमारा राज्य अंग्रेजी में चला तो अंग्रेजी के बोझ के कारण हमारे नवयुवकों की बुद्धि, शक्ति और प्रतिभा क्षीण हो जाएगी। हमारी संस्कृति भ्रष्ट हो जाएगी। ऐसा करना प्रजा के साथ द्रोह होगा'—महात्मा गांधी।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर फड़फड़ाते हुए शीर्षक हैं। उनमें से कुछ शीर्षक ये भी हैं—

१–अंग्रेजी लादने का कुचक्र।

२–भारत से अंग्रेज गए; पर अंग्रेजियत नहीं गई।

३–अंग्रेजी शोषण और लूट का हथियार।

४–अंग्रेजी की वकालत करने वालों से।

५–अंग्रेजी की दासता से मुक्ति आवश्यक।

६–अंग्रेजी से लगाव क्यों ?

यहाँ भाषा के अच्छे-बुरे होने का प्रश्न ही नहीं। प्रश्न तो है—भारत के प्रजा-जनों के विचारों का प्रतिनिधित्व कौन-सी भाषा करती है ? किस भाषा के द्वारा हम जनता के निकट-निकटतर पहुँच सकते हैं ? कौन-सी भाषा को अधिक लोग समझते और बोलते हैं ? वह है भारत की अपनी भाषा—हिन्दी।

मेरा 'संस्थान' के संपादकों से सप्रेम पूछना है कि 'स्वाधीनता पर्व' की समर्थक इस पुस्तिका का 'विचार डाइजेस्ट' नाम उचित है ? 'जुलाई' शब्द को 'जोलाई' लिखते चले जाना क्या राष्ट्रभाषा की एकरूपता में सहायक है ?

मैंने आश्रम के मुन्शी जी से पूछा—मुन्शी जी, 'डाइजेस्ट' शब्द का क्या अर्थ है ? उत्तर मिला—'पचाना'। परन्तु मुझे यह अर्थ पचा नहीं। इसलिए डा० बदरीनाथ कपूर से पूछा, 'भाई 'डाइजेस्ट' शब्द का क्या अर्थ है ? उन्होंने उत्तर दिया, 'सारसंग्रह' मैंने सोचा कि 'विचार सार-संग्रह' क्या बुरा नाम है ? क्या 'डाइजेस्ट' शब्द से हमारी मानसिक परतन्त्रता प्रगट नहीं होती ? क्या यह अंग्रेजियत नहीं ? दासता नहीं ? लगाव नहीं ? हे ईश्वर ! हमें इस दासता से मुक्त कीजिए।

१४

* * *

ज्ञान की पवित्रता और शब्द का महत्व

संसार में ज्ञान के बराबर कोई दूसरी वस्तु पवित्र नहीं—ऐसा स्वयं भगवान् ने अपने श्रीमुख से कहा है। है भी ऐसी ही बात। ज्ञान के कारण ही सब वस्तुओं का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि गुड़ सामने पड़ा हो, गुडमारी जड़ी खाने के कारण उसमें की मधुरता का ज्ञान हमें न हो तो गुड़, गुड़ ही नहीं रहता, गोबर बन जाता है। हमारे पास में बैठे हुए अपने निकट सम्बन्धी का यदि हमें ज्ञान न हो तो वह भी पराया बन जाता है। बिना ज्ञान के प्रतीति नहीं होती। प्रतीति के बिना प्रीति की बात ही कैसी ? सबसे अधिक प्रीति सबको अपने में ही होती है, क्योंकि वे सभी ज्ञान स्वरूप हैं। जो भी अपने को 'मैं' कहता है या व्यक्त वाणी के अभाव से 'मैं' का अनुभव करता है, वह ज्ञान स्वरूप ही है। 'मैं सुखी हूँ' में 'हूँ' सत्ता का वाचक है, 'सुख' आनन्द का वाचक है और 'मैं' चित् का। चित् संवित् का नाम ही ज्ञान है। हूँ=सत्, 'मैं'= चित् एवं 'सुख'=आनन्द अर्थात् 'मैं सच्चिदानन्द हूँ'। परमार्थ हो चाहे व्यवहार हो, बिना ज्ञान के काम नहीं चलता। ज्ञान नित्य है। सबको सदा-सर्वदा प्राप्त है, क्योंकि जहाँ हम हैं या जो हम हैं वह सब ज्ञान ही है। ज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती। यदि कोई ज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध कर ही दे तो भी वह ज्ञान से ही उत्पत्ति सिद्ध करेगा 'घड़े का ज्ञान पैदा हो गया' तथा 'घड़े का ज्ञान नष्ट हो गया' में जो ज्ञान के उत्पत्ति-विनाश प्रतीत हो रहे हैं वे भी वास्तविक नहीं। 'घड़े का ज्ञान उत्पन्न हो गया' का अर्थ है 'घड़ा हमारे ज्ञान का विषय हो गया' तथा 'घड़े का ज्ञान नष्ट हो गया' का अर्थ है कि 'घड़ा हमारे ज्ञान का विषय नहीं रहा'। इतना होने पर भी निर्भ्रान्त ज्ञान 'शब्द' से ही पैदा होता है। शब्द भी ज्ञान की उत्पत्ति नहीं करता; किन्तु अभिव्यक्ति करता है। नित्य प्राप्त की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध होता है 'शब्द' में अचिन्त्य शक्ति है जो सोए हुए को जगा देता है। मन्त्रों के रूप में विष उतार देता है। शब्द ही जूतियाँ या जलेबियाँ खिलाता है।

बातें हाथी पाँव हैं, बातें हाथी पाव

शब्द की इस महिमा का कारण है कि शब्द सब चर-अचर से सूक्ष्म है एवं सबसे बड़ा है। सूक्ष्म इसलिए है कि इसका बाप ही ऐसा है—न उसका स्पर्श होता है, न उसका रूप है, न उसमें रस है और न उसमें गन्ध है। "बेटे से ही बाप की सत्ता का बोध होता है। बेटा है शब्द और बाप है आकाश। बड़ा इसलिए है कि सृष्टि के उत्पत्ति-क्रम में 'शब्द' की सबसे पहले उत्पत्ति होती है। इस सूक्ष्म और बड़े के कारण ही बड़े-बड़े राष्ट्रों के झगड़े खड़े हुए हैं। केवल हुए ही नहीं, हैं और होंगे भी। शब्द की मार का कोई उपचार नहीं। यदि है तो वह शब्द ही होगा। किसी छटपटाते-तड़पते व्यक्ति को देखकर सूरदास के मर्मज्ञ ने पूछा—"किधौं सूर को पद लग्यो ?"। इधर देखिए—वह तो स्वयं बता रहा है—"सबद की चोट लगी मोरे मन में, बेधि गयो तन सारा"। ऐसी दुश्चिकित्स्य चोट से बचाने के लिए प्रकृति देवी ने या भगवान् ने इस शब्द के छोड़ने का साधन भी ऐसा बनाया कि न उसमें हड्डी और न नस। फिर भी उसे बत्तीस के पहरे में रखा। उस पर भी दो किवाड़ लगा दिए। 'निगमवाणी' या 'निगम गीता' का कहना है कि :

"हाड़-विहीन बिना नस के,
हरि ने यह कोमल जीभ बनाई।
दाँत की पाँत में कैद बनाकर
होंठ कपाट तराजू लगाई॥
कोमल बोलिए, सोच के बोलिए,
तोल के बोलिए, बोल सुहाई।
'हंस' सुवंश विनाश-करी,
इस जीभ को हाथ में राखिए भाई।"

× × ×

समझने-समझाने के लिए शब्द का प्रयोग अत्युत्तम साधन है। परन्तु एक ऐसा भी फिरका है जो शब्द सूंघकर उसके पेट की बात बता देता है। उसे 'पण्डितजन' कहते हैं। 'अनुक्त मप्यूहति पण्डितो जनः' अभी-अभी एक पण्डित ने 'पद्मश्री' शब्द को सूंघा और बताया कि 'देखो; पद्म का पर्याय है कमल और कमल का स्त्रीलिंग है 'कमला'। कमला थी नेहरू की धर्मपत्नी। उसकी यादगार के लिए यह 'पद्मश्री' पदवी बनाई गई।

परन्तु हमारी समझ में 'पद्मश्री' का 'अनन्तश्री' सीधा अर्थ है, क्योंकि सबसे बड़ी संख्या का नाम 'पद्म' है। 'वेदानन्द' की स्तुति-निन्दा से निगमान्द को हर्ष-शोक कैसा ? अथवा पद्म-कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। निर्मलता एवं निर्लेपता इसका गुण है। इसलिए मुख-कमल, नेत्रकमल, करकमल, चरणकमल, हृदयकमल आदि रूपों का प्रयोग होता है।

शब्द की विचित्र महिमा है। यद्यपि भगवान ने हमें पुरुष ही बनाया था, पशु नहीं। फिर भी अंग्रेज लोग हमे पशुओं की कोटि में गिनते थे। जब पुण्यश्लोक कालिदास की 'शकुन्तला' का उन्हें पता चला तब वे हैवान तो क्या इन्सान से भी दो कदम आगे 'उत्तम इन्सान' समझने लगे। ठीक तो है, समाज और साहित्य का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। भले ही वाणी के आँखें न हों फिर भी जहाँ तक आँख नहीं देख सकती वहाँ तक यह देख लेती है। जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि और जहाँ न जाए कवि वहाँ जाए अनुभवी। इसलिए अनुभवियों का कहना है कि "यावन्न भाषते किञ्चित तावच्च शोभते नरः" जब तक कोई कुछ बोलता नहीं तब तक शोभा देता है और जब बोला, तब तोला। क्योंकि "बेवकूफ का दिल उसकी जबान में रहता है और बुद्धिमान् को जबान उसके दिल में रहती है।" इसलिए चाणक्य ने कहा है—"बुद्धिस्तु मागान्मम"। सब लोग चले जाएँ—मेरा साथ छोड़ दें; परन्तु एक बुद्धि मेरा साथ न छोड़े। ये वे ही चाणक्य हैं जिनकी जीभ भी उनके दिल की बात नहीं जानती थी। परन्तु हम तो बात जानना और जतलाना चाहते हैं। इसलिए शब्दों के अर्थों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

'सलोना' शब्द का केवल 'सुन्दर' पर्याय देकर आगे बढ़ जाना ठीक नहीं। जहाँ वल्लभाचार्यजी "वदनं मधुरम् अधरं मधुरं" गाते-गाते नहीं अघाते, वहाँ गोपियाँ केवल 'श्याम सलोना' कह देना ही पर्याप्त समझती हैं। 'सलोना' का अर्थ है—रुचिवर्धक—जिससे कभी अरुचि ही न हो। 'मिले रहत मानो कबहूँ मिलेना' हो। माघ के शब्दों में 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति" हो—नित्यप्रति नूतन हो, वह है 'सलोना'= नमकीन।

एक विधवा महारानी ने अपने कुमार को बहुत ही लाड़-प्यार से पाला-पोसा। समय आने पर वह राज्यसिंहासन पर बैठा। जब वह एक दिन माता के भवन में गया, तो माता ने पूर्वप्रसंग की—लालन-पालन की चर्चा करने के बाद पूछा—महाराज, मुझे आप कैसी समझते हैं? नरेश ने उत्तर दिया—नमक-सी। माता ने फिर पूछा—पटरानी को कैसी समझते हैं? नरेश बोला—मिसरी-सी। यह सुनते ही राजमाता का चेहरा उतर गया। नरेश भी समझ गए कि माँ को यह बात बुरी लगी। नरेश ने कर्मचारियों को आदेश दिया कि राजमाता को आज से बढ़िया-बढ़िया मिठाइयों के अतिरिक्त और कुछ मत देना। दो-चार दिनों के बाद राजमाता ने प्रार्थना की कि महाराज, कम से कम मेरा नमक तो बन्द मत कीजिए। नरेश ने कहा—माँ, इसीलिए मैंने कहा था कि पटरानी को मैं मिसरी-सी समझता हूँ एवं तुम्हें नमक-सी।

नमक ऐसी चीज है कि रोज-रोज खाने पर भी उससे जी नहीं ऊबता। यह 'सलोना' शब्द का भाव है।

सच पूछिए तो यदि आप इस प्रकार शब्दों के पेट को टटोलने लग जाएँगे—आप अच्छे सिद्ध या खासे ज्योतिषी बन जाएँगे।

किसी राजा के यहाँ एक सत्या नाम की ब्राह्मणी भोजन बनाया करती थी।

आज जब राजा साहब घूमने गए तो एक झोंपड़ी में बैठे कवि के मुख से श्लोक सुन आए। अपने भवन में आकर उसकी आवृत्ति करने लगे—

"मालती-मुकुले भाति, गुञ्जन्-मत्त-मधुव्रतः।
प्रयाणे पञ्चबाणस्य, शंखमापूरयन्निव" ॥

—मालती के कुड्मल पर बैठा मस्त भौंरा गुंजार करता हुआ बहुत ही शोभा दे रहा है। मानो कामदेव की चढ़ाई का शंख फूंक रहा हो।

यह सुनते ही ब्राह्मणी बोली—महाराज, जिसने यह श्लोक बनाया है वह अन्धा है। राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, कारण कि सचमुच वह कवि अन्धा ही था। दूसरे दिन राजा कवि के पास पहुँचा और बोला कि हमारे यहाँ के एक व्यक्ति ने यह श्लोक सुनते ही बता दिया कि कवि अन्धा है। कवि ने तपाक से उत्तर दिया कि वह विधवा है। अब तो राजा के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा, क्योंकि ब्राह्मणी बालविधवा थी। राजा ने ब्राह्मणी से पूछा—बेटी, तुमने कैसे जाना कि कवि अन्धा है? सत्या ने उत्तर दिया—महाराज, शंख मुंह के सामने होता है, बहुत जोर लगाकर बजाएं तो मुंह से कुछ ऊँचा हो जाता है। मालती का कुड्मल नीचे होता है और भौंरा उसपर बैठता है। अन्धे के बिना आँखों वाला ऐसी भूल नहीं कर सकता। राजा के प्रश्न का समाधान हो गया। जब कवि जी से पूछा कि आपने कैसे बताया कि आपको 'अन्धा' बताने वाला आदमी नहीं, किन्तु स्त्री है और वह भी विधवा? कवि ने उत्तर दिया कि जन्मजात कामकला-प्रवीण अशिक्षितपटु नारी ही होती है। जो इतनी सहृदया एवं विदुषी है–विवाहित तो होगी ही। परन्तु वह विधवा है, कारण कि उसने कभी विपरीत रति नहीं की। यदि विपरीत रति की होती तो उसके ध्यान में यह भी आ जाता कि "कामदेव के प्रयाण में कभी-कभी उलट-पुलट भी हो जाता है।

ऊरुओं को कदली-स्तम्भ की उपमा देना भी किसी अवस्था-विशेष में संगत हो सकता है। नहीं तो कदली-स्तम्भ नीचे से मोटा होता है और ऊपर से पतला तथा ऊरु ऊपर की ओर मोटा होता है एवं नीचे की ओर पतला। अतः सादृश्य नहीं बनता।

× × ×

'रामचरित मानस' के रचयिता गोस्वामी बाबा तुलसीदास जी महाराज महाकवि तो थे ही; परन्तु महान् क्रान्तिकारी भी थे। उन्होंने पहली क्रान्ति शैवों और वैष्णवों की पारस्परिक कटुता दूर करने में की। जितनी सफलता इस विषय में गोस्वामीजी को मिली है उतनी सफलता आज तक किसी भी धार्मिक एवं राजनैतिक नेता को नहीं मिली।

दूसरी क्रान्ति उन्होंने संस्कृत को हिन्दी की भाँति निर्विभक्तिक लिखने की की थी। जैसे—हिन्दी में—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेहु मुनि नाथ।
हानि, लाभ, जीवन, मरण, जस, अपजस विधि हाथ॥

वैसे ही संस्कृत में—

'इति वदति तुलसीदास, शंकर शेष मुनि मन रंजनम्।
मम हृदय कन्ज निवास कुरु कामादि खलदलगंजनम्॥

'तुलसीदास' 'निवास' आदि निर्विभक्तिक रूप हैं। परन्तु संस्कृत का व्याकरण अत्यन्त सशक्त है। इसलिए यह क्रान्ति फलीभूत नहीं होने पाई।

तीसरी क्रान्ति उन्होंने अर्थव्यतिरेककी की है। उसमें वे शतप्रतिशत सफल हुए हैं। जैसे—

'सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन पै कहत न आना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर परिताप सुसन्त पुनीता॥

आदि अनेक अर्थव्यतिरेक बहुत ही चमत्कार पूर्ण हैं।

चौथी क्रान्ति उन्होंने 'य' को 'ज' एवं 'ब' को 'व' लिखने में की। परन्तु खड़ी बोली हिन्दी ने इसमें वैज्ञानिक सुधार कर लिया। जहाँ कहीं अर्थ भ्रम नहीं होता वहाँ वैसे का वैसा संस्कृत तत्सम शब्द ले लिया जैसे—वेद, विप्र आदि। गोस्वामीजी ने सर्वत्र 'बेद' 'बिप्र' ही लिखा है। तद्भव-शब्दों में खड़ी बोली ने भी 'व' को 'ब' बना लिया। जैसे—वार्ता की बात, आदि। गोस्वामीजी ने सर्वत्र 'श' को 'स' तथा 'ये' को 'ए' लिखा है। खड़ी बोली भी 'शिर' को 'सिर' 'दश' को 'दस' तथा 'गयी' को 'गई' लिखने की पक्षपाती है। क्योंकि इन वर्णों के उच्चारण में दुष्करता है—तालु से जीभ चिपटती है। गोस्वामीजी सर्वत्र 'स्याई' 'कैकेई' आदि लिखेंगे। परन्तु खड़ी बोली संस्कृत के तत्सम शब्दों को उनके मूलरूप में लिखने का आग्रह रखती है। परन्तु तद्भव शब्दों को यथाश्रुत ही लिखेगी।

पाँचवी क्रान्ति-गोस्वामीजी ने आद्यानुप्रास की की है। संस्कृत में अन्त्यानुप्रास की बहुलता है। परन्तु गोस्वामीजी का आद्यानुप्रास मानस में मोतियों की भाँति चमकता है। अर्थात् गोस्वामीजी आद्यानुप्रास के आद्याचार्य हैं। इनकी वाणी में शब्दसख्य जैसी वर्णमैत्री मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। जैसे—

(क)

१. काई कुमति कैकेई केरी।
२. काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
३. कपट कलेवर कलिमल भाँडे।

४. किंकर कञ्चन कोह कामके।
५. जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू।
६. कहि कहि कोटिक कपट कहानी।
७: काल नेमि कलि कपट निधानू।
८: कनक कसिपु कलिकाल।
९: काम-कोह कलिमल करिगन के।

कुछ शब्दों के पारिभाषिक अर्थ

पर्यायों एवं एकार्थक-से प्रतीत होने वाले शब्दों को यों ही वैठाते नहीं चले जाना चाहिए। प्रत्येक वैद्य की रोगी-नाम-पंजिका में आपको यह लिखा मिलेगा 'आयु-बारह वर्ष'। परन्तु 'आयु' और 'उमर' शब्द पर्याय एवं एकार्थक नहीं। 'उमर' नाम अवस्था—वय का है और 'आयु' नाम जन्म से लेकर मरने तक के समय का है। इसलिए 'आयु' के स्थान पर 'अवस्था,' 'उमर' या 'वय' लिखना चाहिए। जब कोई छोटी अवस्था में मर जाए तो उसके लिए लिखना कि 'उसने छोटी अवस्था पाई थी' गलत होगा लिखना चाहिए कि 'उसने छोटी आयु पाई थी'।

भेदक का नाम 'विशेषण' है। भेदक कहिए या व्यावर्तक, दोनों का एक ही अर्थ है। जैसे 'विशेषण' भेदक होता है; वैसे 'लक्षण' 'उपलक्षण' 'उपाधि' भी भेदक होते हैं। एक के स्थान पर दूसरे को नहीं रख सकते। इनकी प्रयोग-भूमि पृथक्-पृथक् है। भले ही ये चारों भेदक या व्यावर्तक हों।

विशेषण—सदा अपने सजातीय पदार्थों से ही व्यावर्तन करता है? अथवा जहाँ हम सजातीय पदार्थों से भेद दिखाना चाहते हैं वहाँ हम 'विशेषण' जोड़ देते हैं। विजातीय पदार्थों से व्यावर्तन—भेद करने के लिए 'विशेषण' का उपयोग नहीं होता। कारण कि जहाँ सम्भव और व्यभिचार हो वहीं विशेषण का उपयोग होता है। 'आग ठंडी है' कहना बनता नहीं। 'आग है' कहने में न कहीं व्यभिचार आता है। सम्भव और व्यभिचार से ही विशेषण की सार्थकता है। कई एक लड़कों में से जब हम किसी एक लड़के को बुलाना चाहते हैं तब 'लड़के को बुलाओ' इतना कह देने से काम नहीं चलेगा। कारण कि लड़के तो बहुत-से हैं किसको बुलाएँ? दूसरे लड़कों में प्रयोग का व्यभिचार होता है। 'सींगवाले' को भी नहीं कह सकते क्योंकि 'सींग' की लड़के के सिर पर सम्भवता ही नहीं। तब 'काले लड़के को बुलाओ' ऐसा कहेंगे। 'काला' शब्द ने दूसरे गोरे लड़कों से इसका भेद कर दिया। अतः 'काला' शब्द यहाँ भेदक है व्यावर्तक है। दूसरों से व्यावर्तन कर दिया इसलिए भेदक को 'विशेषण' कहते हैं। 'काला' शब्द लड़के का विशेषण है।

लक्षण—सजातीय एवं विजातीय सभी पदार्थों से व्यावर्तन करता है। गौ की अन्य गौएँ सजातीय हैं और भेड़, बकरी, भैंस, गधा आदि विजातीय हैं। जब सजातीयों से अलग करना चाहेंगे तब 'कपिला गौ को लाओ' आदि कहेंगे तथा जब भैंस,

बकरी आदि से गौ मात्र को अलग करना चाहेंगे तब कहेंगे 'सास्ना=गलकम्बलवाली गौ होती है'। 'कपिला' शब्द विशेषण है तथा 'गलकम्बल' लक्षण है। लक्षण अपने लक्ष्यमात्र में घटना चाहिए। यदि लक्षण अपने लक्ष्य के एक देश में ही घटता है—लक्ष्य के एक देश को ही व्याप्त करता है दूसरे को व्याप्त नहीं करता तो लक्षण की उस कमी का नाम 'अव्याप्ति' दोष है। जब लक्षण अपने लक्ष्यमात्र में घट करके दूसरों में—अलक्ष्य में भी चला जाता है तब लक्षण में 'अति व्याप्ति' दोष आ जाता है, जैसे—'सींगवाली गौ होती है' यह लक्षण भैंस, बकरी आदि में भी चला जाता है। जब लक्षण लक्ष्य में ही सर्वथा न घट सके तो 'असम्भव' दोष समझना चाहिए, जैसे—'एक खुरवाली गौ होती है' कहना। एक खुर गधे-घोड़े आदि के होता है। अर्थात् जब हम सजातीय एवं विजातीय सभी पदार्थों से व्यावर्तन करना चाहते हैं तब 'लक्षण' का उपयोग करते हैं, क्योंकि लक्षण स्वरूप का बोधक होता है।

'उपाधि'—भी व्यावर्तन करती है तथा विशेषण भी व्यावर्तन करता है। विशेषण साथ रह करके व्यावर्तन करता है तथा उपाधि अलग रह करके व्यावर्तन करती है। 'काले लड़के को बुलाओ' में 'काला' विशेषण है वह साथ ही आयेगा। 'एक गज कपड़ा ले आओ' या 'सेर भर दूध ले आओ' में 'गज' और 'सेर' ने क्रमशः दूसरे कपड़े एवं दूध से कपड़े और दूध का व्यावर्तन तो कर दिया पर स्वयं साथ नहीं आए। कपड़े के साथ गज या मीटर तथा दूध के साथ सेर या किलो नहीं आता इसलिए 'गज' और 'सेर' विशेषण नहीं 'उपाधि' हैं। क्योंकि उपाधि अलग रह कर भेदक=व्यावर्तक होती है और विशेषण साथ रहकर भेदक=व्यावर्तक होता है।

'उपलक्षण'—इन तीनों से थोड़ा विलक्षण है। इसे विशेषण नहीं मान सकते, क्योंकि यह साथ रहकर अलग नहीं करता। इसे लक्षण भी नहीं कह सकते, क्योंकि लक्षण तो सदा-सर्वदा साथ ही रहता है तथा लक्ष्य के स्वरूप का बोधक होता है। इसे उपाधि भी नहीं कह सकते; क्योंकि उपाधि का साथ रहकर नहीं, पास में रहकर अलग करना नियम है। परन्तु उप-लक्षण में ऐसा कोई नियम नहीं। वह पास में रहे या न रहे। जैसे किसी ने पूछा—राम का घर कौन-सा है ? उत्तर मिला—जिस पर कौआ बैठा है वह राम का घर है। 'कौआ' शब्द ने दूसरे घरों से राम के घर को अलग कर दिया। यदि कौआ अब उड़ भी जाए तो भी पूछने वाला 'राम के घर' पहुँच जाएगा। 'कौआ' सदा साथ मे नहीं रहता। अर्थात्—घर का असाधारण धर्म नहीं, अतः यह 'लक्षण' भी नहीं। यह साथ में रहकर भेदक=व्यावर्तक नहीं, अतः विशेषण भी नहीं। यह उपाधि की भाँति पास में भी नहीं रहता। अतः यह 'कौआ' शब्द घर का 'उपलक्षण' है। लक्षण स्वरूप का बोधक होता है, किन्तु उपलक्षण स्वरूप का बोधक नहीं होता।

'प्रत्यक्ष'—पद में का 'अक्ष' शब्द इन्द्रियों का वाचक है। इन्द्रियों के सम्मुख रहने वाले पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है या वे पदार्थ प्रत्यक्ष कहे जाते हैं। आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ पांच ज्ञान-इन्द्रियां हैं। इनसे प्रत्यक्ष होता है। आंख से होने वाला चाक्षुष प्रत्यक्ष, कान से होने वाला श्रावण प्रत्यक्ष, नाक से होने वाला घ्राणज

प्रत्यक्ष, त्वचा से होने वाला त्वाच प्रत्यक्ष तथा जीभ से होने वाला रासन प्रत्यक्ष कहलाता है।

जब ये पदार्थ इन्द्रियों के सम्मुख न होकर इनसे ओझल रहते हैं तब ये 'परोक्ष' कहलाते है।

परन्तु सुख-दुःख आदि को हम परोक्ष नही कह सकते, क्योकि इनका अनुभव हो रहा है। इन्हें प्रत्यक्ष भी नही कह सकते; क्योंकि सुख-दुःख पांचों इन्द्रियों मे से किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं। सुख-दुःख को न देख सकते हैं, न सूंघ सकते हैं, न छू सकते हैं, न सुन सकते है एवं न चख ही सकते हैं। इसलिए सुख-दुःख आदि न परोक्ष हैं और न प्रत्यक्ष हैं, किन्तु 'अपरोक्ष' हैं।

(कुछ लोग 'अपरोक्ष' शब्द को 'प्रत्यक्ष' शब्द का पर्याय मानते हैं। क्योंकि वे वाचस्पति मिश्र के अनुयायी हैं। मिश्र जी 'मन' को इन्द्रिय मानते हैं।)

'मैं हूं' जो आप बोल रहे हैं यह कौन-सा अनुभव है? इसे प्रत्यक्ष नही कह सकते; क्योकि यह किसी इन्द्रिय का विषय नही। इसे परोक्ष भी नही कह सकते; क्योंकि प्रतीत हो रहा है। इसे अपरोक्ष भी नही कह सकते; क्योंकि मेरे प्रकाश के बिना जड़ मन मुझे क्या प्रकाशित=बोधित करेगा। वेद भगवान् ने कहा—'साक्षात् अपरोक्षात् ब्रह्म'। 'मैं हूं' यह अनुभव 'साक्षात् अपरोक्ष' कहलाता है। सुख-दुःख केवल अपरोक्ष मात्र है, साक्षात् अपरोक्ष नही और 'मैं' यह 'साक्षात् अपरोक्ष' है और यही 'ब्रह्म' है। वेदव्यास जी ने कहा कि सबसे गुप्त और सबसे बड़ी बात कहता हूं सुनो—"गुह्यं ब्रह्म तदेतद् ब्रवीमि, न मानुषात् श्रेष्ठतरं किञ्चित्" मनुष्य से बढ़कर कुछ श्रेष्ठ नहीं। परन्तु यह अनुभूति बिना साधना एवं सत्संग के कभी नहीं होती।

× × ×

लम्बाई—पूर्व से पश्चिम।
चौड़ाई—उत्तर से दक्षिण।
(पूर्व-पश्चिम दक्षिण-उत्तर लम्बाई चौड़ाई)
ऊँचाई—भूमि से आकाश की—ऊपर की ओर।
(गो) गुलाई—केन्द्र के चारों ओर समनान्तर रेखा।

× × ×

साहित्य दर्पण में से—

१—निर्वेद=तत्त्वज्ञान, विपत्ति, ईर्ष्या आदि के कारण अपने आपको धिक्कारना। इसमें हीनता, चिन्ता, आंसू, दीर्घश्वास, विवर्णता, उच्छ्वास आदि होते हैं।

२—आवेग=घबराहट। हर्ष से उत्पन्न घबराहट मे शरीर संकुचित, उत्पात से जन्य घबराहट मे शरीर ढीला, आग से जन्य धुएं आदि से व्याकुलता, इष्ट से जन्य मे हर्ष तथा अनिष्ट से जन्य में शोक होता है।

३. दैन्य=दुर्गति आदि से जन्य ओजस्विता का अभाव। इससे मलीनता आदि पैदा होते हैं।

४. श्रम=मार्ग चलने आदि से उत्पन्न खेद। इससे सांस फूलना, नींद आना आदि होते हैं।

५. मद=बेहोशी तथा आनन्द से मिश्रित अवस्था। जो मद्य आदि के सेवन से पैदा होती है। इसमें उत्तम पुरुष सो जाते हैं, माध्यम पुरुष हंसते और गाते हैं तथा नीच प्रकृति के लोग गाली-गलौज करते हैं।

६. जड़ता=इष्ट या अनिष्ट के दर्शन से या सुनने से उत्पन्न किंकर्तव्य विमूढ़ता का नाम है। इसमें टकटकी लगाकर देखते रहना, चुप हो जाना आदि होते हैं।

७. उग्रता=शूरवीरता एवं अपराध आदि से जन्य चण्डता। इनमें पसीना, सिर कांपना, तर्जन करना, ताड़न करना आदि होते हैं।

८. मोह=भय, दुःख, घबराहट, अतिचिन्ता आदि के कारण उत्पन्न चित्त-व्याकुलता परेशानी। इसमें मूर्छा, अज्ञान, पतन, चक्कर आना, दिखाई न देना आदि होते है।

९.—विबोध=निद्राभंग करने वाले कारणों से उत्पन्न चैतन्य लाभ का नाम विबोध है। इसमें जंभाई, अंगड़ाई, झपकी, निज अंग देखना आदि होते हैं।

१०—स्वप्न=नींद में डूबे पुरुष का विषयानुभव न करना स्वप्न कहलाता है। (बाह्य इन्द्रियों के अपने कारण में लीन हो जाने पर नई मानसिक सृष्टि रच लेना)। इसमें क्रोध, आवेग, भय, ग्लानि, सुख-दुःख आदि होते हैं।

११.—अपस्मार=भूत-आवेश आदि के कारण होने वाले चित्तविक्षेप का नाम अपस्मार (मिरगी) है। इसमें भूमि पर गिरना, कांपना, पसीना आना, मुंह में से झाग और लार टपकना आदि होते हैं।

१२—गर्व=अपने प्रभाव, ऐश्वर्य, विद्या, कुलीनता आदि से उत्पन्न घमण्ड। इसमें दूसरे की अवज्ञा करना, आंख, अंगूठा आदि दिखाना, अविनीतपन करना आदि होते हैं।

१३—मरन=बाण आदि के लगने से प्राणों का वियोग हो जाना। इसमें शरीर गिर जाना आदि होते है।

१४—आलस्य=थकावट आदि से जन्य जड़ता। इसमें जंभाई, एक जगह बैठे रहना आदि होते हैं।

१५—अमर्ष=निंद्रा, आक्षेप, अपमान, आदि से उत्पन्न चित्ताभिनिवेश का नाम है। इसमें आंख लाल होना, सिर कांपना, त्यौरी चढ़ना, डांटना आदि होते हैं।

१६—निद्रा=परिश्रम, ग्लानि, मद आदि से चित्त के सम्मीलन का (बाह्य इन्द्रियों से विषय अग्रहण का) नाम है। इसमें जंभाई, आंख मिचना, अंगड़ाई आदि होते हैं।

१७—उत्सुकता=इष्ट वस्तु की प्राप्ति में विलम्ब न सह सकने का नाम है। इसमें चित्तसन्ताप, शीघ्रता, पसीना आना, दीर्घ निश्वास आदि होते है।

१८—उन्माद=काम, शोक, भय आदि से उत्पन्न चित्त-सम्मोह का नाम है। इसमें अकारण हँसना, रोना, गाना, प्रलाप आदि होते हैं।

१६—शंका=दूसरे की क्रूरता तथा अपने दोष आदि से अपने अनिष्ट की तर्कना का नाम है। इससे विवर्णता, कम्प, स्वरभंग, इधर-उधर ताकना, मुंह सूखना आदि होते हैं।

२०—स्मृति=समान वस्तु के देखने तथा चिन्तन आदि से पूर्व अनुभूत वस्तु के स्मरण का नाम है। इसमें भौंह चढना आदि होते हैं।

२१—मति=नीति मार्ग का अनुसरण करने आदि से किसी बात की तह तक पहुंच जाने का नाम है। इसमें मुस्कराहट, धीरता, सन्तोष, एवं आत्म सम्मान होते हैं।

२२—व्याधि=वात, पित्त, कफ आदि से उत्पन्न ज्वर आदि का नाम है। इसमें धरती पर लोटने की इच्छा, कम्प आदि होते हैं।

२३—त्रास=बिजली की कड़क, बम का धमाका, तारा टूटना आदि से होने वाली चित्त की व्यग्रता का नाम है। इसमे कम्प, ठिठकना आदि होते हैं।

२४—व्रीड़ा=निम्न श्रेणी के आचार-व्यवहार से उत्पन्न होने वाली धृष्टता का अभाव। इसमे सिर नीचा होना आदि होते हैं।

२५—हर्ष=इष्ट वस्तु की प्राप्ति से होने वाली मन की प्रसन्नता। इसमें आनन्द के आँसू, गद्गद् स्वर आदि होते हैं।

२६—असूया=औद्धत्य के कारण दूसरे की गुण-समृद्धि सहन न कर सकना। इसमें दोष कथन, नाक भौं सिकोड़ना, तिरस्कार, क्रोध, इशारा करना आदि होते हैं।

२७. विषाद=उपाय के अभाव से जन्य पुरुषार्थहीनता का नाम है। इसमें निःश्वास, उच्छ्वास मनस्ताप, सहायक ढूंढना आदि होते हैं।

२८. धृति=तत्त्वज्ञान, इष्ट प्राप्ति आदि के कारण इच्छाओ की पूर्ति हो जाना। इसमें तृप्ति, आनन्दपूर्ण वचनावली, मधुर मुस्कान, बुद्धि विकास आदि होते है।

कालिदास ने विकार के कारणो की उपस्थिति होने पर भी चित्त के अविकार का नाम 'धृति' कहा है। 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतासि त एव धीराः।'

भागवत ने जीभ और जननेन्द्रिय पर विजय पाने को धृति कहा है—जिह्वो-पस्थजयो धृतिः।

२६. चपलता=मत्सर, द्वेष आदि के कारण होने वाली अवस्था का नाम 'चपलता' है। इसमें दूसरों को धमकाना, कठोर शब्द बोलना, उच्छृंखल आचरण आदि होते हैं।

३०. ग्लानि=परिश्रम' मनस्ताप, भूख-प्यास आदि से होने वाली निर्बलता। इसमें कम्प, काम करने मे अनुत्साह आदि होते हैं।

३१. चिन्ता=हितकारी वस्तु की अप्राप्ति से होने वाला ध्यान। इसमें शून्यता, श्वास, ताप आदि होते हैं।

३२. वितर्क=सन्देह से होने वाले विचार का नाम 'वितर्क' है। इसमे भ्रूभंग, सिर हिलाना, अंगुली उठाना आदि होते हैं।

गीता की मधुसूदनी टीका में से

१. विषाद=स्नेही बन्धुओं के विच्छेद की आशंका का कारण, शोक का दूसरा नाम। जो चित्त की व्याकुला है उसका नाम 'विषाद' है।

२. प्रहास=अनुचित आचरण प्रकाशित करके लज्जा पैदा कर देना 'प्रहास' कहलाता है।

3. अभ्यास=चारो ओर से चित्त को खींचकर एक ही विषय में बार-बार लगाने का नाम 'अभ्यास' है।

४. हर्ष=प्रिय वस्तु का लाभ होने पर जिससे रोमाच अश्रुपात आदि होते हैं ऐसे आनन्द की अभिव्यंजक चित्तवृत्ति विशेष का नाम 'हर्ष' है।

(इष्ट वस्तु के दर्शन से प्रियता होती है, उसके मिलने से मोद होता है तथा उसके उपभोग से प्रमोद होता है।).

५. अमर्ष=दूसरे का उत्कर्ष सहन न कर सकने वाली चित्तवृत्ति 'अमर्ष' है।

६. भय=प्राण घातक के दर्शन के अधीन हुई चित्तवृत्ति का नाम 'भय' है।

७. उद्वेग='सब परिग्रहों से शून्य अकेला मैं इस निर्जन मे कैसे जी सकूंगा' ऐसीव्याकुलतारूप चित्तवृत्ति 'उद्वेग' कहलाती है।

८. निरपेक्ष=भोगों के सब उपकरणों के स्वयं उपस्थित कर देने पर भी स्पृहा न होना निरपेक्षता है। जिसमें यह हो वह 'निरपेक्ष' है।

९. शुचिता=बाहर और अन्दर की पवित्रता।

१० दक्ष=ज्ञातव्य और कर्तव्य के उपस्थित हो जाने पर जो झटपट जानने और करने में समर्थ हो वह।

११. उदासीन=जो किसी शत्रु एवं मित्र का पक्ष न ले वह तटस्थ।

१२. क्षमावान्=जो पीडा होने पर भी पीडा देने वाले को पीड़ा न पहुंचाए वह, अर्थात् जैसे मुझे पीड़ा हो रही है ऐसे इसे पीडा न हो, यह विचारने वाला।

१३. शरीर=इन्द्रिय एवं अन्तःकरण सहित भोग का स्थान।

१४. इच्छा=सुख विषयक तथा उसके साधन विषयक 'ये मुझे मिल जाएँ' इस स्पृहारूप चित्तवृत्ति का नाम 'इच्छा' है।

१५. द्वेष=दुःख और उसके साधन विषयक 'ये मुझे न मिले' इस विरोधी चित्तवृत्ति का नाम 'द्वेष' है।

१६. मानिता=अपने में वे गुण हो चाहे न हों, उन गुणों से अपनी ‹ करना।

१७. दम्भ=प्राप्ति, पूजा एवं प्रसिद्धि के लिए अपना धर्म प्रगट ॰ 'दम्भ' है।

१८. हिंसा=मन, वाणी एवं काया से किसी प्राणी को पीड़ा पहुंचाना।

१९. क्षान्ति=चित्त को क्षुब्ध कर डालने वाले दूसरे के अपराध निर्विकार चित्त से सह लेना।

२०. स्थिरता=अनेक प्रकार के विघ्नों के उपस्थित होने पर भी अंगी कार्य को न छोड़कर बार-बार उसमें और अधिक यत्न करना।

× × ×

आराम=बगीचा, नगर के अन्दर लगाया हुआ।

उपवन=बगीचा, नगर के पास लगाया हुआ।

उद्यान=बगीचा, जहाँ पर चढ़कर पहुँचा जाता है।

श्रवण=युक्ति से—षड् विधलिंगों से किसी वाक्य के तात्पर्य का निश्च करना श्रवण है।

मनन=उस निश्चित तात्पर्य की साधक एवं बाधक युक्तियों से अनुमान आदि से उसी का चिन्तन करना मनन है।

निदिध्यासन=तद्भिन्नाकार वृत्ति के व्यवधान से रहित तदाकार वृत्ति की स्थिति ही निदिध्यासन है। निदिध्यासन की परिपक्व अवस्था का नाम ही 'समा' है।

पंजाबी लोग 'छे' और 'छी' बोलते हैं। 'छियालीस' 'छियासठ' 'छिहत्त' 'छियासी' 'छियानवें' इसी 'छी' शब्द से बने हैं।

'छह' 'सोलह' 'छब्बीस' 'षष्-छह' शब्द के अपभ्रंश हैं।

इसी प्रकार दूसरे सभी शब्दों के विषय में भी अर्थ-चिन्तनकर लेना चाहिए।

ओं तत् सत्

हिन्दी जगत् इस निर्लिप्त महात्मा के प्रयत्न से कितना अधिक लाभान्वित होगा—यह तो भविष्य के गर्भ में है परन्तु यह सुनिश्चित है कि अनेक व्याकरणगत मान्यताओं में शुभ परिवर्तन इन पुस्तकों द्वारा होगा ही।

"निगमानन्द व्यक्तित्व एवं कृतित्व" विषय पर आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि की स्वीकृति दी। मेरठ विश्वविद्यालय ने "हिन्दी का मौलिक व्याकरण" विषय को पी-एच० डी० की शोध के लिए स्वीकृति दी। दो एक अन्य विश्वविद्यालयों से इनके कृतित्व को लेकर शोध-कार्य की स्वीकृति की आशा है।

अन्य कृतियाँ

वैरागीवीर—महाकाव्य
हमारे श्रीराम—गद्य
राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप